अक्तूबर, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अक्तूबर, 2019 अंक - 10

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2019) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

देश में साम्प्रदायिक राजनीति का आधार बने हुए मुद्दे जैसे कि तीन तलाक, अनुच्छेद 370 और अयोध्या विवाद के शांतिपूर्वक समाधान पर मुस्लिम समुदाय द्वारा कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई बल्कि इन सभी मामलों में अदालती निर्णयों या सरकार के फैसलों का स्वागत किया गया । यह बात कट्टरपंथी विचारधारा के लोगों को बर्दाश्त नहीं हुई क्योंकि यह उनके एजेंडा के विपरीत था । उनको यह चिन्ता सताने लगी कि कहीं सामान्य मुस्लिम राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल न हो जाएं और कट्टरपंथी विचारधारा से भटक जाएं, इसलिए उन्होंने सामान्य मुस्लिमों की भावनाओं को भड़काने के रास्ते तलाशने आरम्भ कर दिए । इस दिशा में उनका साथ दिया वामपंथियों ने और देश की प्रतिष्ठित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में कश्मीर में अलगाववाद और आतंकवादियों के समर्थन में नारेबाजी कराई गई । इसकी प्रतिक्रिया जहां एक तरफ देश के सामान्य नागरिकों में अलगाववाद और आतंकवाद के विरुद्ध हुई, वहीं दूसरी तरफ कट्टरपंथियों द्वारा इसे मुस्लिमों की समस्या के रूप में पेश किया गया । इसी प्रकार, तीन तलाक और हलाला जैसी समस्याओं के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के विरोध में भी सामान्य मुस्लिमों को धार्मिक मामलों में अदालतों और सरकार द्वारा दखलअंदाजी के नाम पर बहकाने का प्रयास किया गया । यद्यपि ये प्रयास सफल नहीं हो पाए, फिर भी सरकार और जनसामान्य को कट्टरपंथियों के एजेंडे से बचकर रहना होगा ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अक्तूबर, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
केन्द्रीय विद्यालय संगठन, करीमगंज, असम **बनाम** जगतज्योति कुमार दास **उर्फ** भोपाल दास द्वारा उसकी विधिक वारिस 1-(ए) मीरा दास और अन्य	497
गांदला लक्ष्मी (श्रीमती) और अन्य **बनाम** श्रीमती जी. अशव्वा और अन्य	570
नीता दरबारी (श्रीमती) **बनाम** आलोक सक्सेना	549
नीलम अग्रवाल (श्रीमती) **बनाम** नगर निगम, रायपुर	511
पी. के. हमज़ा हाजी **बनाम** केरल राज्य वक़्फ़ बोर्ड और अन्य	479
प्रताप और एक अन्य **बनाम** अनिल	470
मधु चौधरी और अन्य **बनाम** राजिन्दर कुमार और एक अन्य	523
मुरादाबाद डेवलपमेंट अथार्टी **बनाम** श्री साई सिद्धी डेवलपर्स	452
रजेती प्रभाकर राव **बनाम** मोशा सत्यवथी और अन्य	429
रवि शंकर त्रिपाठी प्रोप्राईटरशिप फर्म (मैसर्स), बिलासपुर, छत्तीसगढ़ **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य	506
राजकुमार शर्मा **बनाम** श्रीमती मंजू	532
राम तरी और अन्य **बनाम** रतन चन्द और अन्य	557
लक्ष्मण भीमाभाई दाकी और अन्य **बनाम** कादवीबेन भीमाभाई दाकी और अन्य	486

संसद् के अधिनियम

मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम, 1961 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1– 24

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 13(1)(i-ख) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका – पति के विरुद्ध दहेज की मांग, पिटाई और दुर्व्यवहार के आरोप – पत्नी द्वारा इन आरोपों के संबंध में किसी न्यायालय/पुलिस थाना में कोई शिकायत दर्ज न कराया जाना – इन आरोपों को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपने वैवाहिक घर के किसी नातेदार या पड़ोसी का कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष परीक्षण न कराया जाना – पति द्वारा विवाह-विच्छेद आवेदन प्रस्तुत किए जाने के पूर्व निरंतर दो वर्ष तक वैवाहिक घर न आना और वैवाहिक जीवन के दायित्वों का निर्वहन न करना – पत्नी द्वारा पति के परित्याग के दृढ़ निश्चय को दर्शाता है – पति विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

राजकुमार शर्मा बनाम **श्रीमती मंजू** 532

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 372 – उत्तराधिकार प्रमाणपत्र के लिए आवेदन – धारा 372 के अधीन कार्यवाहियां सरसरी प्रकृति की कार्यवाहियां होती हैं – अत: किसी नियमित वाद में सक्षम न्यायालय द्वारा उत्तराधिकार के बारे में निकाला गया निष्कर्ष ऐसी कार्यवाहियों में आबद्धकर होता है ।

मधु चौधरी और अन्य बनाम **राजिन्दर कुमार और एक अन्य** 523

वक़्फ़ अधिनियम, 1995 (1995 का 43)

– धारा 54 – वक़्फ़ संपत्ति पट्टे पर दी जानी – पट्टे की अवधि के पर्यवसान के पश्चात् पट्टाधारक द्वारा

पृष्ठ संख्या

दुकान खाली न की जानी – पट्टेदार को अतिचारी मानकर मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा भिन्न अधिकारियों को कार्यवाही करने के लिए निदेश दिया जाना – विधिमान्यता – चूंकि अधिनियम के अधीन मुख्य कार्यपालक अधिकारी और अधिकरण को ही कार्यवाही करने के लिए प्राधिकृत किया गया है – अत: मुख्य कार्यपालक अधिकारी अपनी शक्ति किसी अन्य अधिकारी को प्रत्यायोजित करके कार्यवाही नहीं करा सकता – अत: ऐसा कोई प्रत्यायोजन विधिविरुद्ध होगा ।

पी. के. हमज़ा हाजी बनाम **केरल राज्य वक़्फ़ बोर्ड और अन्य** 479

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 10 – करार का विनिर्दिष्ट अनुपालन – वादग्रस्त संपत्ति के विक्रय के बाबत करार के अंतर्गत सहमत राशि के संदाय में तत्परता – संपूर्ण राशि का संदाय स्वीकृत होना – अपीलार्थी-वादी करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री का हकदार है ।

नीता दरबारी (श्रीमती) बनाम **आलोक सक्सेना** 549

– धारा 10 – करार का विनिर्दिष्ट अनुपालन – वादग्रस्त संपत्ति का नक्शा संपत्ति की स्थिति को उजागर करता है लेकिन जहां संपत्ति का विवरण करार में अंकित हो, उस स्थिति में नक्शे पर पक्षकारों के हस्ताक्षर न होने से भी संपत्ति के करार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता ।

नीता दरबारी (श्रीमती) बनाम **आलोक सक्सेना** 549

पृष्ठ संख्या

– धारा 34 – हक़ की घोषणा और क़ब्जे के लिए वाद – संपत्ति के पूर्वतर स्वामी से वाद-संपत्ति क्रय करने वाले व्यक्ति से संपत्ति विक्रय विलेख द्वारा क्रय की जानी – विचारण न्यायालय द्वारा द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति सहित अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री पर विचार करके वादी के हक़ में वाद डिक्री किया जाना – प्रतिवादियों द्वारा वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को किसी भी प्रकार से आक्षेपित न किया जाना – अपील न्यायालय द्वारा सामान्यतया द्वितीय अपील में निचले न्यायालय के मत को तब तक उलटना नहीं चाहिए जब तक कि निचले न्यायालय का मत स्पष्टतया विधिविरुद्ध या अनियमित न हो ।

केन्द्रीय विद्यालय संगठन, करीमगंज, असम बनाम **जगतज्योति कुमार दास** उर्फ **भोपाल दास द्वारा उसकी विधिक वारिस 1-(ए) मीरा दास और अन्य** 497

– धारा 34 और 37 – हक़दारी की घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए वाद – वादी द्वारा प्रतिवादी को भूमि पर से सन्निर्माण गिराने से रोकने और प्रतिकर दिलाने के लिए अनुरोध – राजस्व प्राधिकारियों द्वारा सीमांकन किए जाने पर यह प्रतीत होना कि वादी ने सरकारी भूमि पर अतिचार किया है – वादी द्वारा यह साबित करने में विफ़ल रहना कि सीमांकन विधि के प्रतिकूल या उसकी तथा उसके प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में किया गया था – वादी द्वारा सीमांकन रिपोर्ट को आक्षेपित न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया जाना उचित है ।

नीलम अग्रवाल (श्रीमती) बनाम **नगर निगम, रायपुर** 511

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 – कतिपय वस्तुओं के प्रदाय और सन्निर्माण के लिए निविदा – तकनीकी बोली और वित्तीय बोली – जहां तकनीकी बोली अन्तर्वलित हो वहां प्रथमत: तकनीकी अर्हता का निर्धारण किया जाना चाहिए – प्राधिकारी तकनीकी बोली के निर्धारण के प्रक्रम पर उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, वित्तीय बोली का निर्देश करके बोली वापस नहीं ले सकते ।

रवि शंकर त्रिपाठी प्रोप्राईटरशिप फर्म (मैसर्स), बिलासपुर, छत्तीसगढ़ बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य** 506

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 8, नियम 9 – वादी द्वारा हक की घोषणा और कब्जे के परिदान के लिए वाद – लिखित कथन में संपत्ति की अदला-बदली की कहानी को प्रथम बार उठाया जाना – वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल करने के लिए अनुज्ञा हेतु आवेदन फाइल किया जाना – खारिजी – यदि प्रतिवादियों द्वारा पेश की गई संपत्ति की अदला-बदली की कहानी सही पायी जाती है तो वादी को नुकसान पहुंच सकता है – अत: वादी प्रत्युत्तर फाइल करने का हकदार है ।

गांदला लक्ष्मी (श्रीमती) और अन्य बनाम **श्रीमती जी. अशव्वा और अन्य** 570

– आदेश 21, नियम 37, 40 और धारा 51 का परंतुक (ख) – धनीय डिक्री का निष्पादन – गिरफ्तारी के लिए वारंट – निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्रीत रकम का संदाय

पृष्ठ संख्या

न किया जाना – न्यायालय को निर्णीत ऋणी को निष्पादन याचिका में सुनवाई का अवसर प्रदान करना चाहिए और इस बाबत जांच संचालित करनी चाहिए कि क्या उसके पास डिक्रीत रकम के संदाय के प्रयोजनार्थ पर्याप्त साधन हैं और तत्पश्चात् सकारण आदेश पारित करना चाहिए ।

रजेती प्रभाकर राव बनाम **मोशा सत्यवथी और अन्य** 429

– आदेश 21, नियम 37, 40 और धारा 51 – धनीय डिक्री का निष्पादन – प्रक्रिया – निर्णीत ऋणियों का अनुपस्थित रहना और निष्पादन न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही किए जाने के लिए अग्रसर होना – न्यायालय द्वारा डिक्री धारक को निर्णीत ऋणी के साधनों को साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाना – जांच निर्णीत ऋणी की अनुपस्थिति में किया जाना – निष्पादन न्यायालय द्वारा निर्णीत ऋणियों के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किए बिना यह अभिनिर्धारित किया जाना कि डिक्री धारक निर्णीत ऋणी के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहा है और निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया जाना त्रुटिपूर्ण है ।

रजेती प्रभाकर राव बनाम **मोशा सत्यवथी और अन्य** 429

– आदेश 39, नियम 1 और 2 – अंतरिम व्यादेश – अस्थायी व्यादेश के लिए आवेदन के लंबन के दौरान अंतरिम आदेश की मंजूरी – विधिमान्यता – न्यायालय विवादग्रस्त संपत्ति के संबंध में संपत्ति को नष्ट करने से रोकने, नुकसान पहुंचाने अंतरण करने और विक्रीत करने से रोकने, संपत्ति को हटाने या वादी को बेकब्जा

पृष्ठ संख्या

करने से रोकने के प्रयोजन के लिए कोई आदेश करने के लिए सशक्त है ।

मुरादाबाद डेवलपमेंट अथार्टी बनाम **श्री साई सिद्धी डेवलपर्स** 452

– आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा आदेश 43, नियम 1(द) – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – वाद के लंबन के दौरान एकपक्षीय अंतरिम आदेश – न्यायालय वाद के लंबन के दौरान विवादग्रस्त संपत्ति को क्षय होने से बचाने, नुकसान पहुंचने से बचाने, अंतरित या विक्रीत करने से रोकने के लिए अंतरिम आदेश पारित कर सकता है तथापि, ऐसे आदेश पारित करने के लिए समुचित कारण अभिलिखित किए जाने चाहिए ।

मुरादाबाद डेवलपमेंट अथार्टी बनाम **श्री साई सिद्धी डेवलपर्स** 452

– आदेश 39, नियम 1 – अस्थायी व्यादेश के लिए आवेदन – वादी द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध भूमि पर से बेकब्ज़ा करने और फसल काटने से रोकने के लिए अनुतोष मांगा जाना – वादी द्वारा खतौनी, खसरा और कब्ज़ा-पत्र द्वारा अपना कब्जा और सुविधा का संतुलन साबित किया जाना – प्रतिवादियों द्वारा अपने स्वामित्व और क़ब्जे के बारे में कोई दस्तावेज पेश न किया जाना – अस्थायी व्यादेश ठीक ही मंजूर किया गया है ।

प्रताप और एक अन्य बनाम **अनिल** 470

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

– धारा 6 और 8 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 20, नियम 12 – संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति

पृष्ठ संख्या

– विभाजन और अन्त:कालीन लाभों के लिए वाद – वादी और प्रतिवादी सगे भाई और बहिनें होना – प्रतिवादियों द्वारा यह अभिवचन किया जाना कि उनके द्वारा पिता के ऋणों को चुकाने के कारण उनके सह-अंश धारियों ने संपत्ति उनके सुपुर्द कर दी थी और वे उसमें खेती नहीं करते थे – प्रतिवादियों द्वारा पिता के ऋण को चुकाने का कोई सबूत पेश न किया जाना – राजस्व अभिलेखों में सह-अंश धारियों के नामों की भी प्रविष्टियां होना – वित्तीय स्थिति कमजोर होने के कारण संपत्ति अपने भाइयों को जोतने देने के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सह-अंश धारियों ने अपने अंश त्यक्त कर दिए थे – संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति होने के कारण संपत्ति 20 वर्ष से अधिक की अवधि से प्रतिवादियों के कब्जे में होने के आधार पर सह-अंश धारियों का हक समाप्त नहीं हो जाता – अत: वे संपत्ति का विभाजन कराने और अंत:कालीन लाभ पाने के हकदार हैं ।

लक्ष्मण भीमाभाई दाकी और अन्य बनाम **कादवीबेन भीमाभाई दाकी और अन्य** 486

– धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि – सह-अंशदार – सह-अंशदार द्वारा दूसरे सह-अंशदार से भिन्न व्यक्ति को भूमि का विक्रय – सह-अंशधारी द्वारा अग्र-क्रय के अधिकार का दावा – विधिमान्यता – चूंकि सह-अंशदार ने अपने सह-अंशदार और सह-खातेदार को भूमि विक्रीत करने का कोई प्रस्ताव नहीं किया अत: वादी-सह-अंशदार का व्यतिक्रम न होने और अधिमानी अधिकार

पृष्ठ संख्या

होने के कारण वह वाद-भूमि के प्रतिफल का संदाय करके भूमि का क़ब्जा पाने का अधिकारी है ।

राम तरी और अन्य बनाम **रतन चन्द और अन्य** 557

– धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि का विक्रय – सह-अंशदार द्वारा सह-अंशदार और सह-खातेदार से भिन्न व्यक्ति को विक्रय – वादी-सह-अंशदार द्वारा अग्र-क्रय का दावा – वादी द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश न की जानी – प्रभाव – चूंकि प्रतिवादी द्वारा अपने हक़ में विक्रय विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया गया है – इसके अतिरिक्त वादी के काउंसेल का यह दायित्व था कि वह विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश करे – अत: काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए वादी को अनुतोष देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

राम तरी और अन्य बनाम **रतन चन्द और अन्य** 557

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 5 – हिन्दू पुरुष और ईसाई स्त्री के बीच विवाह – विधिमान्यता – विवाह से पूर्व ईसाई स्त्री द्वारा रीतियों और अनुष्ठानों द्वारा हिन्दू धर्म अपनाया जाना – विवाह के पश्चात् पक्षकार पति और पत्नी के रूप में साथ-साथ रहना – ऐसा विवाह विधिमान्य विवाह माना जाएगा ।

मधु चौधरी और अन्य बनाम **राजिन्दर कुमार और एक अन्य** 523

(2019) 2 सि. नि. प. 429 आंध्र प्रदेश

रजेती प्रभाकर राव

बनाम

मोशा सत्यवथी और अन्य

तारीख 3 जून, 2019

(2018 की सिविल पुनरीक्षण याचिका सं. 7107)

न्यायमूर्ति यू. दुर्गा प्रसाद राव

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 21, नियम 37, 40 और धारा 51 का परंतुक (ख) – धनीय डिक्री का निष्पादन – गिरफ्तारी के लिए वारंट – निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्रीत रकम का संदाय न किया जाना – न्यायालय को निर्णीत ऋणी को निष्पादन याचिका में सुनवाई का अवसर प्रदान करना चाहिए और इस बाबत जांच संचालित करनी चाहिए कि क्या उसके पास डिक्रीत रकम के संदाय के प्रयोजनार्थ पर्याप्त साधन हैं और तत्पश्चात् सकारण आदेश पारित करना चाहिए ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 21, नियम 37, 40 और धारा 51 – धनीय डिक्री का निष्पादन – प्रक्रिया – निर्णीत ऋणियों का अनुपस्थित रहना और निष्पादन न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही किए जाने के लिए अग्रसर होना – न्यायालय द्वारा डिक्री धारक को निर्णीत ऋणी के साधनों को साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाना – जांच निर्णीत ऋणी की अनुपस्थिति में किया जाना – निष्पादन न्यायालय द्वारा निर्णीत ऋणियों के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किए बिना यह अभिनिर्धारित किया जाना कि डिक्री धारक निर्णीत ऋणी के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहा है और निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया जाना त्रुटिपूर्ण है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि डिक्री धारक ने प्रतिज्ञा पत्र के

आधार पर 55,520/- रुपए की वसूली के लिए निर्णीत ऋणियों/प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के विरुद्ध 2016 का मूल वाद संख्या 274 फाइल किया । इस वाद में प्रतिवादी अनुपस्थित रहे और अंतत: वाद तारीख 20 जून, 2016 को वादी के पक्ष में एकपक्षीय रूप से डिक्री कर दिया गया । तत्पश्चात् डिक्री धारक ने 2017 की निष्पादन याचिका संख्या 54 यह प्रार्थना करते हुए फाइल की कि निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 से डिक्री के निर्देशों का अनुपालन कराए जाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 के अधीन सूचना जारी की जाए और यदि वे उक्त डिक्री के निर्देशों का पालन करने में असफल रहते हैं तो उनको सिविल कारागार में निरुद्ध किया जाए । उसने निष्पादन याचिका के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में अभिकथित किया कि निर्णीत ऋणी संख्या 2 से 4 कामकाज करने के द्वारा जीवनयापन कर रहे हैं और उनमें से प्रत्येक 25,000/- रुपए प्रतिमाह का वेतन प्राप्त कर रहा है और वे डिक्री के अंतर्गत देय रकम का एकमुश्त में संदाय करने में समर्थ हैं और पर्याप्त हैसियत होने के बावजूद जानबूझकर डिक्री के अधीन देय रकम का संदाय नहीं कर रहे हैं । निष्पादन याचिका के साथ संलग्न आदेश के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 सूचना प्राप्त होने पर व्यक्तिगत रूप से और अपने काउंसेल के माध्यम से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए । किंतु निर्णीत ऋणियों के काउंसेल ने कोई खंडन शपथपत्र फाइल नहीं किया । अत:, निष्पादन न्यायालय ने मामले को तारीख 17 जुलाई, 2018 के लिए निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 की उपस्थिति के प्रयोजनार्थ नियत कर दिया, किंतु निर्णीत ऋणी तब भी अनुपस्थित रहे और इसलिए न्यायालय ने आदेशित किया कि मामले में उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की जाएगी और मामले को तारीख 10 अगस्त, 2018 को डिक्री धारकों के साक्ष्य के लिए नियत कर दिया ताकि वे निर्णीत ऋणियों के साधनों को साबित करने के प्रयोजनार्थ सबूत प्रस्तुत कर सके । ऐसा प्रतीत होता है कि डिक्री धारकों ने न्यायालय से अनुरोध किया कि निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37(2) के निबंधनों के अनुसार गिरफ्तारी के वारंट जारी किए जाएं, चूंकि वे न्यायालय के आदेशों के अनुपालन में उपस्थित होने में विफल रहे हैं । तथापि,

न्यायालय ने इस आधार पर गिरफ्तारी के वारंट जारी करने से इनकार कर दिया कि डिक्री धारकों द्वारा यह दर्शित करने के प्रयोजनार्थ अभिलेख पर कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि निर्णीत ऋणी कामकाज कर रहे हैं और आय प्राप्त कर रहे हैं और डिक्री धारकों द्वारा किए गए मात्र अभिवचनों के अतिरिक्त यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री उपस्थित नहीं है कि निर्णीत ऋणियों की कोई आय है और इसलिए डिक्री धारक डिक्री के अंतर्गत देय रकम का संदाय कर पाने में निर्णीत ऋणियों के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहे हैं । यह मताभिव्यक्तियां करते हुए निष्पादन न्यायालय ने निष्पादन याचिका तारीख 22 अक्तूबर, 2018 को खारिज कर दी । अतः, यह सिविल पुनरीक्षण याचिका फाइल की गई । पुनरीक्षण याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अतः, उद्धृत निर्णयों का सार यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51(ग) निर्णीत ऋणी को सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने के लिए उपबंधित करती है जब तक कि निष्पादन का यह तरीका सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11, जो इस धारा के परंतुक में प्रक्रियात्मक रक्षोपायों के लिए उपबंधित करता है, का अतिक्रमण नहीं करता । अतः, निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्रीत रकम का मात्र असंदाय उसको जांच संचालित किए बिना और न्यायालय के इस बाबत संतुष्ट हुए बिना कि परंतुक में उल्लिखित शर्तों में से एक शर्त उसको सिविल कारागार भेजे जाने के प्रयोजनार्थ संतुष्ट हो गई है, सिविल कारागार में नहीं पहुंचाएगा । इन्हीं निर्णयों में धारा 51 के परंतुक (ख) के संदर्भ में यह मताभिव्यक्ति की गई कि केवल निर्णीत ऋणी की पूर्ववर्ती धनाढ्यता और वर्तमान गरीबी या वर्तमान में उसके पास पर्याप्त साधनों और उनका होना पर्याप्त नहीं है जब तक कि उसके पास पर्याप्त साधनों के होने के बावजूद उसके द्वारा संदाय में स्वैच्छिक रूप से विफलता का कोई सबूत न हो और उपलब्ध साधनों पर अत्यावश्यक खर्च मौजूद न हो जैसेकि कैंसर या अन्य गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए चिकित्सा बिल । इसलिए इस बाबत कोई लेश मात्र भी संदेह नहीं हो सकता कि जब धनीय डिक्री के आधार पर निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी के लिए कोई याचिका फाइल की जाती है तो न्यायालय निर्णीत ऋणी को अवसर प्रदान करेगा और इस बाबत जांच संचालित करेगा कि क्या

निर्णीत ऋणी के पास डिक्री पारित किए जाने के उपरांत डिक्री की रकम या उसके किसी सारभूत भाग के संदाय के लिए पर्याप्त साधन हैं या थे और वह फिर भी उस रकम का संदाय करने से इनकार करता है या उपेक्षा करता है या उसने इनकार कर दिया है या उपेक्षा कर दी है और तत्पश्चात् सुविचारित आदेश पारित करता है । अत:, निर्णीत ऋणी के साधनों के संबंध में जांच के लिए अनुध्यात करने वाली संहिता की योजना को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 और 40 में पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया गया है । कोई डिक्री धारक, जो निर्णीत ऋणी को गिरफ्तार किए जाने और सिविल कारागार में उसको निरुद्ध किए जाने के द्वारा निष्पादन की ईप्सा करता है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 नियम 11क के निबंधनों के अनुसार उन आधारों को अभिकथित करते हुए शपथपत्र फाइल करेगा, जिन पर गिरफ्तारी के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया है । तत्पश्चात्, न्यायालय के समक्ष नियम 37 के अधीन दो विकल्प होंगे । यदि न्यायालय पूर्वोक्त शपथपत्र से संतुष्ट है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि निर्णीत ऋणी के डिक्री के निष्पादन को विलंबित करने के उद्देश्य से फरार हो जाने या न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता को छोड़ देने की संभाव्यता है, तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिए तुरंत उसकी उपस्थिति को न्यायालय के समक्ष सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ वारंट जारी कर सकता है या अन्यथा न्यायालय गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के बजाय निर्णीत ऋणी से उसके समक्ष उपस्थित होने और यह स्पष्ट करने कि उसे सिविल कारागार में निरुद्ध क्यों नहीं किया जाना चाहिए की अपेक्षा करते हुए नोटिस जारी कर सकता है । तत्पश्चात्, सिविल प्रक्रिया संहिता का नियम 37(2) यह परिकल्पित करता है कि यदि निर्णीत ऋणी नोटिस के मतावलंबन में उपस्थित हो गया है, तो न्यायालय निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर देगा, यदि डिक्री धारक ऐसा ही चाहता है । अत:, न्यायालय निर्णीत ऋणी की उपस्थिति को उसे तलब करने के द्वारा या उसके विरुद्ध वारंट जारी करने के द्वारा सुनिश्चित कर सकता है । यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि नियम 37(1) या (2) के अधीन गिरफ्तारी का वारंट जारी किया जाना केवल निर्णीत ऋणी की उपस्थिति को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ है ताकि न्यायालय नियम 40 के अधीन जांच के

लिए अग्रसर हो सके और उसको सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 और 55 के निबंधनों के अनुसार सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने के लिए नहीं । इसलिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 के प्रक्रम पर न्यायालय को मामले के गुणागुण पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती, जैसाकि धारा 51 के परंतुक के अधीन परिकल्पित किया गया है । तत्पश्चात्, नियम 40 यह अभिकथित करता है कि जब निर्णीत ऋणी या तो नियम 37 के अधीन जारी की गई नोटिस के अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, तो न्यायालय डिक्री धारक को सुनने के लिए अग्रसर होगा और निष्पादन याचिका के समर्थन में उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करेगा और तत्पश्चात् निर्णीत ऋणी को इस बाबत कारण दर्शित करने का एक अवसर प्रदान करेगा कि उसको सिविल कारागार में क्यों न निरुद्ध किया जाए । पुनः, न्यायालय पूर्वोक्त जांच के लंबित रहने के दौरान अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए निर्णीत ऋणी को न्यायालय के एक अधिकारी की अभिरक्षा में निरुद्ध रखे जाने या उसकी अनुपस्थिति की बाबत, जब भी अपेक्षित हो, न्यायालय के समाधान के अनुसार उसके द्वारा प्रतिभूति प्रस्तुत किए जाने के आधार पर उसको निर्मुक्त किए जाने का आदेश पारित करेगा । न्यायालय जांच की समाप्ति पर धारा 51 के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए निर्णीत ऋणी को सिविल कारागार में निरुद्ध रखे जाने का आदेश पारित करेगा और उस स्थिति में उसको गिरफ्तार करा देगा, यदि वह पहले से गिरफ्तार नहीं है । जब न्यायालय निरोधादेश पारित नहीं करता, तो वह निष्पादन याचिका को नामंजूर कर देगा और यदि निर्णीत ऋणी गिरफ्तार है, तो उसको निर्मुक्त किए जाने के लिए निर्देशित कर देगा । जब हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों का परिशीलन उपरोक्त निष्कर्षों और राष्ट्रपति के आदेशों के प्रकाश में किया जाता है, तो इस मामले में निर्णीत ऋणी 3 और 4 न्यायालय में कुछ समय तक उपस्थित रहने के पश्चात् अनुपस्थित हो गए थे और निष्पादन न्यायालय उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही करने के लिए अग्रसर हुआ और मामले को डिक्री धारक के साक्ष्य के लिए नियत कर दिया ताकि वह निर्णीत ऋणियों के साधनों को साबित कर सके । यहां

पर यह कहा जाना आवश्यक है निष्पादन न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 40 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया के प्रति पूर्णत: अनभिज्ञ था जिसका यह अर्थ निकलता है कि साधनों के संबंध में जांच निर्णीत ऋणी की उपस्थिति में की जानी चाहिए । ऐसा प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने डिक्री धारक द्वारा न्यायालय से सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 37(2) के निबंधनों के अनुसार गिरफ्तारी का वारंट जारी किए जाने के अनुरोध के बावजूद गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के बजाय यह अभिनिर्धारित किया कि डिक्री धारक निर्णीत ऋणी के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहा है और अंतत: निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया, जो विधिक आज्ञा के विरुद्ध पूर्णत: त्रुटिपूर्ण आदेश है । (पैरा 9, 12, 13 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] 2002 (3) ए. एल. टी. 240 = मनु./ए. पी./1397/2001 = ए. आई. आर. 2002 (एन. ओ. सी.) 118 (ए. पी.) :
काशी सुब्बैय्याह मुदाली बनाम **काशी वेक्रस्वामी मुदाली** ; 14

[1980] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 470 :
जॉली जॉर्ज वर्घीस बनाम **बैंक आफ कोचीन** ; 7

[1974] ए. आई. आर. 1974 मद्रास 1 = मनु./टी. एन./ 0107/1974 :
पी. जी. रंगनाथ पदयाची बनाम **मायावरम फाइनेंशियल कारपोरेशन लिमिटेड** ; 12

[1969] मनु./के. ई./0255/1969 :
जेवियर बनाम **केनारा बैंक लिमिटेड** ; 5

[1964] 1964 (2) आंध्र वीकली रिपोर्टर 38 (डी. वी.) :
सुराबराकू पुटरय्या बनाम **मद्दुकुरी वी. राजू** । 12

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल पुनरीक्षण याचिका सं. 7107.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण याचिका ।

याची की ओर से श्री ए. रविन्द्र बाबू

प्रत्यर्थी की ओर से –

आदेश

डिक्री धारक की पहल पर इस सिविल पुनरीक्षण याचिका में राजामहेन्द्रवर्णम जिले के विद्वान् प्रमुख कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित 2016 के मूल वाद संख्या 274 में 2017 की निष्पादन याचिका संख्या 54 में तारीख 22 अक्तूबर, 2018 को पारित आदेश, जिसके द्वारा डिक्री धारक द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 के अधीन फाइल की गई याचिका, जिसके द्वारा न्यायालय से निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 के विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी किए जाने और उनको रकम की वसूली के प्रयोजनार्थ सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने की ईप्सा की गई, को खारिज कर दिया गया, को चुनौती दी गई है ।

2. मामले की तथ्यात्मक स्थिति इस प्रकार है :–

"डिक्री धारक ने प्रतिज्ञा पत्र के आधार पर 55,520/- रुपए की वसूली के लिए निर्णीत ऋणियों/प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के विरुद्ध 2016 का मूल वाद संख्या 274 फाइल किया और इस वाद में प्रतिवादी अनुपस्थित रहे और अंतत: उक्त वाद को तारीख 20 जून, 2016 को वादी के पक्ष में डिक्री कर दिया गया । तत्पश्चात् डिक्री धारक ने 2017 की निष्पादन याचिका संख्या 54 यह प्रार्थना करते हुए फाइल की कि निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 से डिक्री के निर्देशों का अनुपालन कराए जाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 के अधीन सूचना जारी कर दी जाए और

यदि वे उक्त डिक्री के निर्देशों का पालन करने में असफल रहते हैं तो उनको सिविल कारागार में निरुद्ध किया जाए । उसने निष्पादन याचिका के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में अभिकथित किया कि निर्णीत ऋणी संख्या 2 से 4 कार्य करने के द्वारा जीवन-यापन कर रहे हैं और उनमें से प्रत्येक 25,000/- रुपए प्रतिमाह का वेतन प्राप्त कर रहा है और वे डिक्री के अंतर्गत देय रकम का एकमुश्त में संदाय कर पाने के पर्याप्त साधन और हैसियत होने के बावजूद जानबूझकर ऐसा नहीं कर रहे हैं । पूर्वोक्त निष्पादन याचिका के आदेश का समर्थ कार्य आदेश, जिसकी सत्यापित प्रति इस निष्पादन याचिका के साथ संलग्न है, से दर्शित होता है कि निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 सूचना प्राप्त होने पर व्यक्तिगत रूप से और अपने काउंसेल के माध्यम से भी न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए । इस मामले में उनके खंडन शपथपत्र फाइल होने में अनेक स्थगन लिए गए और अंतत: तारीख 22 जून, 2018 को निर्णीत ऋणियों के काउंसेल ने कोई खंडन शपथपत्र फाइल नहीं किया । अत:, निष्पादन न्यायालय ने मामले को तारीख 17 जुलाई, 2018 के लिए निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 की उपस्थिति के प्रयोजनार्थ नियत कर दिया, किंतु वे अनुपस्थित रहे और इसलिए न्यायालय ने आदेशित किया कि मामले में उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की जाएगी और मामले को तारीख 10 अगस्त, 2018 को डिक्री धारकों के साक्ष्य के लिए नियत कर दिया ताकि वे निर्णीत ऋणियों के साधनों को साबित कर सकें । ऐसा प्रतीत होता है कि डिक्री धारकों ने न्यायालय से अनुरोध किया कि निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37(2) के निबंधनों के अनुसार गिरफ्तारी के वारंट जारी किए जाएं । चूंकि वे न्यायालय के आदेशों के अनुपालन में उपस्थित होने में विफल रहे । तथापि, न्यायालय ने इस आधार पर गिरफ्तारी के वारंट जारी करने से इनकार कर दिया कि डिक्री धारकों द्वारा यह दर्शित करने के प्रयोजनार्थ अभिलेख पर कोई

सामग्री प्रस्तुत नहीं की है कि निर्णीत ऋणी कार्य कर रहे हैं और कोई आय प्राप्त कर रहे हैं और डिक्री धारकों द्वारा किए गए मात्र अभिवचनों के अतिरिक्त यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री उपस्थित नहीं है कि निर्णीत ऋणियों की आय है और इसलिए डिक्री धारक डिक्री के अंतर्गत देय रकम का संदाय कर पाने में निर्णीत ऋणियों के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहे । यह मताभिव्यक्तियां करते हुए निष्पादन याचिका तारीख 22 अक्तूबर, 2018 को खारिज कर दी गई ।

अतः, यह सिविल पुनरीक्षण याचिका फाइल की गई ।"

3. सिविल पुनरीक्षण याचिका में निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 को सूचना जारी की गई किंतु उनकी तरफ से कोई प्रतिनिधित्व नहीं हुआ । अतः पुनरीक्षण याची/डिक्रीदार के विद्वान् काउंसेल को सुना गया ।

4. पुनरीक्षण के अधीन आदेश पर आक्रमण करते हुए याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि जब निर्णीत ऋणी संख्या 3 और 4 तारीख 17 जुलाई, 2018 को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहे, तो न्यायालय को डिक्रीदार द्वारा किए गए अनुरोध के मतावलंबन में एकपक्षीय आदेश को अपास्त करने के बजाय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37(2) के निबंधनों के अनुसार गिरफ्तारी का वारंट जारी कर देना चाहिए था, ताकि निर्णीत ऋणियों की उपस्थिति को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 40 के अधीन जांच संचालित कराए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय के समक्ष सुनिश्चित किया जा सके । विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि नियम 40 के अधीन इस प्रकार की जांच निर्णीत ऋणी की उपस्थिति में संचालित की जानी चाहिए और उनको अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और इस उद्देश्य की प्राप्ति केवल तभी संभव है जब निर्णीत ऋणियों को गिरफ्तार किए जाने के द्वारा उनकी उपस्थिति को सुनिश्चित किया जाए । किंतु न्यायालय ने निष्पादन याचिका को ही इस त्रुटिपूर्ण मताभिव्यक्ति के आधार पर खारिज कर दिया कि डिक्रीदार निर्णीत

ऋणियों के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहे हैं । चूंकि कोई जांच संचालित नहीं की गई और डिक्रीदार ने कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया है, इस बात का प्रश्न नहीं उठता कि डिक्रीदार निर्णीत ऋणियों के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहे हैं । अत: उन्होंने सिविल पुनरीक्षण याचिका को मंजूर किए जाने की प्रार्थना की ।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने इस प्रश्न का समाधान किए जाने के प्रयोजनार्थ कि निर्णीत ऋणी को उसके विरुद्ध पारित डिक्री का अननुपालन कारित किए जाने के कारण सिविल कारागार में निरुद्ध किया जाना चाहिए, निर्णीत ऋणी के साधनों की जांच संचालित किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रक्रिया, जिसका पालन निष्पादन न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए, के संबंध में विधि के अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाया । इस बात पर जोर दिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि गिरफ्तारी के लिए फाइल की गई निष्पादन याचिका में जांच संचालित किए जाने के प्रयोजनार्थ क्या प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए, जो दोषमुक्त हो क्योंकि जांच अंतत: निर्णीत ऋणियों की वैयक्तिक स्वतंत्रता, जो जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकार है, जैसाकि संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित है और मान्यता प्रदान की गई है, को समाप्त करते हुए सिविल कारागार की सलाखों के पीछे निरुद्ध किए जाने के परिणाम के साथ समाप्त होती है ।

6. <u>संविदात्मक बाध्यताओं के भंग पर सिविल कारागार में निरोध : क्या संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन स्वातंत्र्य रक्षोपायों के मूल अधिकारों का अतिलंघन है और सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 का अतिक्रमण है ।</u>

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अधीन निष्पादन के विभिन्न तरीकों के बाबत डिक्रियों के विभिन्न प्रकारों के बारे में उपबंधित किया गया है, जो निम्नलिखित है :-

"51. **निष्पादन कराने की न्यायालय की शक्तियां** - ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाए,

न्यायालय डिक्रीदार के आवेदन पर आदेश दे सकेगा कि डिक्री का निष्पादन –

(क) विनिर्दिष्ट रूप से डिक्रीत किसी संपत्ति के परिदान द्वारा किया जाए ;

(ख) किसी संपत्ति की कुर्की और विक्रय द्वारा या उसकी कुर्की के बिना विक्रय द्वारा की जाए ;

(ग) जहां धारा 58 के अधीन गिरफ्तारी और निरोध अनुज्ञेय है वहां गिरफ्तारी और ऐसी अवधि के लिए जो उस धारा में विनिर्दिष्ट अवधि के अधीन न हो, कारागार में निरोध द्वारा किया जाए ;

(घ) रिसीवर की नियुक्ति द्वारा किया जाए ; अथवा

(ङ) ऐसी अन्य रीति से किया जाए जिसकी दिए गए अनुतोष की प्रकृति अपेक्षा करे :

परंतु जहां डिक्री धन के संदाय के लिए है वहां कारागार में निरोध द्वारा निष्पादन के लिए आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि निर्णीत ऋणी को इसके लिए हेतुक दर्शित करने का अवसर देने के पश्चात् कि उसे कारागार को क्यों न सुपुर्द किया जाए, न्यायालय का अभिलिखित कारणों से यह समाधान नहीं हो जाता है कि –

(क) निर्णीत ऋणी इस उद्देश्य से या यह परिणाम पैदा करने के लिए कि डिक्री के निष्पादन में बाधा या विलंब हो, –

(i) न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं से फरार होने वाला है या उन्हें छोड़ने वाला है, अथवा

(ii) उस वाद के संस्थित किए जाने के पश्चात् जिसमें वह डिक्री पारित की गई थी अपनी संपत्ति के किसी भाग को बेईमानी से अंतरित कर चुका है, छिपा चुका है या हटा चुका है अथवा अपनी संपत्ति के संबंध

में असद्भावपूर्ण कोई अन्य कार्य कर चुका है, अथवा

(ख) डिक्री की रकम या उसके पर्याप्त भाग का संदाय करने के साधन निर्णीत ऋणी के पास हैं या डिक्री की तारीख के पश्चात् रह चुके हैं और वह उसे संदत्त करने से इनकार या संदत्त करने में उपेक्षा करता है या कर चुका है,

(ग) डिक्री उस राशि के लिए है, जिसका लेखा देने के लिए निर्णीत ऋणी वैश्वासिक हैसियत में आबद्ध था ।

स्पष्टीकरण – खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए, निर्णीत ऋणी के साधनों की गणना करने में, ऐसी संपत्ति गणना में से छोड़ दी जाएगी, जो डिक्री के निष्पादन में कुर्क किए जाने से तत्समय प्रवृत्त किसी विधि या विधि का बल रखने वाली रूढ़ि द्वारा या उसके अधीन छूट प्राप्त है ।"

(ख) धारा 51(ग) का गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धनीय डिक्री के निष्पादन के अनेकों तरीकों में से एक तरीका निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी और उसका कारागार में निरोध किया जाना है । इस अनुतोष की घातकता को ध्यान में रखते हुए निर्णीत ऋणियों की ओर से यह दलील श्रमसाध्यतापूर्वक दी जाती रही है कि मात्र संविदात्मक बाध्यताओं के अतिलंघन के कारणवश निर्णीत ऋणियों का सिविल कारागार में निरोध किए जाने से एक तरफ सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 का और दूसरी तरफ संविधान के अनुच्छेद 21 का घोर अतिक्रमण होगा किंतु इस दलील पर प्रख्यात न्यायविद् वी. आर. कृष्णा अय्यर द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के संदर्भ में दिए गए कुछ निर्णयों में विस्तारपूर्वक विचार किया गया । **जेवियर** बनाम **केनारा बैंक लिमिटेड**[1] वाले मामले में धनीय डिक्रियों के निष्पादन के प्रयोजनार्थ निर्णीत ऋणियों का सिविल कारागार में निरोध किए जाने के विरुद्ध दी गई

[1] मनु./के. ई./0255/1969.

दलीलों में से एक दलील यह थी कि सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा देश के कानून का भाग है और इसका सम्मान देश के न्यायालयों द्वारा किया जाना चाहिए और इस बात को ध्यान में रखते हुए इस प्रसंविदा का अनुच्छेद 11 इस बात का विरोध करता है और ईमानदार निर्णीत ऋणियों और निर्धनों का कारागार से मुक्ति के लिए उपबंधित करता है । सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा का अनुच्छेद 11 इस प्रकार है :-

> "अनुच्छेद 11. किसी भी व्यक्ति को मात्र संविदात्मक बाध्यता को पूर्ण कर पाने में असमर्थता के आधार पर कारागार में निरुद्ध नहीं किया जाएगा ।"

(ग) उक्त निर्णय में इस निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया गया कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 की भावना के विरुद्ध है । हम सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के परंतुक में पाते हैं कि जहां डिक्री धन के संदाय के लिए है, कारागार में निरोध द्वारा निष्पादन का आदेश उक्त परंतुक में अधिकथित शर्तों का अनुपालन किए बिना पारित नहीं किया जाएगा । वे शर्तें जिनको पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया है, निर्णीत ऋणियों के हितों की रक्षा के लिए आशयित है । इसलिए न्यायालय किसी निष्पादन याचिका में गिरफ्तारी का आदेश पारित करने के पूर्व निर्णीत ऋणी को सूचना जारी करेगा ताकि उसको इस बाबत हेतु दर्शित करने का अवसर प्रदान किया जा सके कि उसका कारागार में निरोध क्यों नहीं किया जाना चाहिए । तत्पश्चात् इस बाबत अपना समाधान अभिलिखित करने के पश्चात् कि निर्णीत ऋणी डिक्री के निष्पादन को विलंबित करने या उसके मार्ग में बाधाएं खड़ी करने के उद्देश्य से कतिपय कार्य कर रहा है, उसका सिविल कारागार में निरोध किया जा सकता है । विद्वान् न्यायाधीश ने **जेवियर** (उपरोक्त) वाले मामले में इन प्रक्रियात्मक रक्षोपायों पर विचारोपरांत यह मताभिव्यक्ति की थी कि धारा 51 में कतिपय प्रक्रियात्मक रक्षोपाय उपलब्ध कराए हैं

जो यह है कि यदि ऋणी के पास संदाय करने के लिए कोई साधन नहीं है, तो उसको गिरफ्तार और उसका निरोध नहीं किया जा सकता ; यदि उसके पास साधन है और फिर भी वह अपनी बाध्यताओं का पालन करने से इनकार करता है या उसकी उपेक्षा करता है या यदि वह असद्भावी कारित करता है, तो वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अधीन कारागार के दायित्व को भोगेगा । विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि इससे अनुच्छेद 11 की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता । उन्होंने आगे मताभिव्यक्ति की कि यदि किसी भी समय बिंदु पर निर्णीत ऋणी के पास साधन उपलब्ध होते हैं, किंतु इस समय उपलब्ध नहीं हैं या यदि इस समय उसके पास धन है जिस पर अन्य अत्यावश्यक दावे हैं, तो यह अनुच्छेद 11 की भावना का अतिक्रमण होगा कि उसको गिरफ्तार किया जाए और जेल में निरोधित किया जाए ताकि उसको संदाय करने के लिए विवश किया जा सके । यह मताभिव्यक्ति करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने निर्णीत ऋणियों के काउंसेल द्वारा दी गई इस महात्वाकांक्षी दलील को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 को दृष्टि में रखते हुए निर्णीत ऋणी को गिरफ्तारी से पूर्णरूपेण मुक्ति प्रदान कर दी जाए । इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में प्रतिष्ठापित मूल मानव अधिकारों के बारे में न्यायिक संस्थाओं को सूचित किया जाना चाहिए और उनको सदस्य देशों के भीतर उन्हीं के अनुरूप विधायी कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए ; किंतु उपरोक्त गहन श्रद्धा के अलावा किसी व्यथित व्यक्ति की पहल पर की गई अनुतोषात्मक कार्रवाई न्यायिक प्राधिकार के परिक्षेत्र के परे होती है । उपरोक्त मताभिव्यक्ति का सार यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 में निर्णीत ऋणी को सिविल डिक्री के अतिक्रमण के कारण सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने के पूर्व कतिपय प्रक्रियात्मक रक्षोपाय उपबंधित किए जाने के द्वारा अनुच्छेद 11 की भावना भी सन्निहित है ।

7. **जॉली जॉर्ज वर्घीस** बनाम **बैंक आफ कोचीन**[1] वाले मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय (माननीय न्यायाधीश श्री आर. एस. पाठक और श्री वी. आर. कृष्ण अय्यर) ने निर्णीत ऋणियों द्वारा ऋणों का संदाय किए जाने या ऋणों का निर्वहन किए जाने से असद्भावी रूप से इनकार किए जाने, यदि किया गया हो, के संबंध में उनकी वर्तमान अर्हता के संबंध में कोई अन्वेषण संचालित किए बिना पुन: निष्पादन न्यायालय की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए एक प्रश्न पूछा कि क्या इन परिस्थितियों के अंतर्गत निर्णीत ऋणियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रभावित किया जाना अभिनिर्धारित किया जा सकता है जब तक कि ऋण का संदाय न कर दिया जाए और यदि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 सपठित आदेश 21, नियम 37 संवैधानिक है, जब उनका परीक्षण अनुच्छेद 21 के अधीन निष्पक्ष प्रक्रिया की कसौटी पर और किया जाता है और सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा की धारा 11 के प्रकाश में किसी व्यक्ति के अंतर्निहित गरिमा के पुष्टिकरण में है । इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने **जेवियर** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए, यह मताभिव्यक्ति की :-

> "15. हम विधि आयोग से उनके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के संबंध में निकाले गए अर्थान्वयन से सहमत हैं । इसका अर्थ यह है कि उसके दायित्वों का परिसमापन किए जाने में कपट और बदनीयती के बारे में मध्यक्षेप किए बिना पूर्ववर्ती धनाढ्यता और वर्तमान गरीबी प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 के संगत हो सकती है क्योंकि तब सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के अधीन कोई निरोध अनुज्ञेय नहीं होगा ।
>
> 16. ऋणों के असंदाय के लिए कारागार के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 21 का अर्थान्वयन भी समान रूप से अर्थपूर्ण है । मानवीय गरिमा के उच्च मूल्य और मनुष्य का महत्व अनुच्छेद 21 सपठित अनुच्छेद 14 और 19 में प्रतिष्ठापित है जो राज्य पर यह बाध्यता अधिरोपित करते हैं कि विधि की प्रक्रिया का पालन किए

[1] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 470.

बिना किसी को बंदी न बनाया जाए जो कि प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण से उचित, निष्पक्ष और युक्तिसंगत है । **मेनका गांधी** वाला मामला [(1978) 1 एस. सी. सी. 248 = ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597] जिसमें प्रतिपादित सिद्धांत को सुनील बत्रा **बनाम** दिल्ली प्रशासन [मनु./एस. सी./0184/1978 = 1978 क्रिमिनल ला जर्नल 1741] सीताराम और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [मनु./एस. सी./0244/1979 = 1979 क्रिमिनल ला जर्नल 659] वाले मामलों में पुन: विकसित किया गया और जिनमें इस प्रतिपादना को अधिकथित किया गया है । इस बात को भी पुन: विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि किसी व्यक्ति को उसकी गरीबी और उसके संविदात्मक दायित्वों को पूरा कर पाने में परिणामजन्य असमर्थता के कारण कारागार में निरुद्ध किया जाना विस्मयकारी है । इस दरिद्रनारायण वाले देश में गरीब होना कोई अपराध नहीं है और किसी व्यक्ति को कारागार में निरुद्ध किए जाने की प्रक्रिया के द्वारा ऋणों की वसूली किया जाना अनुच्छेद 21 का स्पष्ट रूप से अतिक्रमण है जब तक कि उसके पास पर्याप्त साधनों के होने के बावजूद जानबूझकर संदाय में विफलता के न्यूनतम सबूत उपस्थित न हों और उसके पास उपलब्ध साधनों पर अत्यावश्यक खर्च मौजूद न हो जैसेकि कैंसर या अन्य गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए चिकित्सा बिल । इस प्रकार की किसी भी प्रक्रिया में असंगतता और पक्षपात के बाबत अनुमान प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 से लगाया जा सकता है । किंतु यह मात्र निर्वचन है जिसे हम सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 के परंतुक के संबंध में करते हैं और अनुच्छेद 21 का घातक प्रहार इस उपबंध को समाप्त नहीं करता, जैसाकि हमारे समक्ष निर्वचन किया गया है ।"

8. इस प्रश्न के संबंध में कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 सपठित आदेश 21, नियम 37 अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण में है, जो मताभिव्यक्ति की गई वह निम्नलिखित है :-

"यह प्रश्न किसी न किसी दिन स्पष्ट रूप से उद्भूत होगा कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 सपठित आदेश 21,

नियम 37 का परंतुक अनुच्छेद 21 में उपबंधित संवैधानिक आज्ञा के आधिक्य में है और दूषित है । चूंकि हमारे समक्ष उपस्थित मामले में हम मामले को पुन: विचारण के लिए वापस भेज रहे हैं, हमारे लिए वह प्रक्रम अभी तक उद्भूत नहीं हुआ है जिसमें हम इस उपबंध के वायरस पर विचार करें, इसी कारणवश हम उस मामले से स्वयं को विरत करते हैं ।"

9. अत: ऊपर उद्धृत निर्णयों का सार यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51(ग) निर्णीत ऋणी को सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने के लिए उपबंधित करती है जब तक कि निष्पादन का यह तरीका सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11, जो इस धारा के परंतुक में प्रक्रियात्मक रक्षोपायों के लिए उपबंधित करता है, का अतिक्रमण नहीं करता । अत:, निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्रीत रकम का मात्र असंदाय उसको जांच संचालित किए बिना और न्यायालय के इस बाबत संतुष्ट हुए बिना कि परंतुक में उल्लिखित शर्तों में से एक शर्त उसको सिविल कारागार भेजे जाने के प्रयोजनार्थ संतुष्ट हो गई है, सिविल कारागार में नहीं पहुंचाएगा । इन्हीं निर्णयों में धारा 51 के परंतुक (ख) के संदर्भ में यह मताभिव्यक्ति की गई कि केवल निर्णीत ऋणी की पूर्ववर्ती धनाढ्यता और वर्तमान गरीबी या वर्तमान में उसके पास पर्याप्त साधनों और उनका होना पर्याप्त नहीं है जबतक कि उसके पास पर्याप्त साधनों के होने के बावजूद उसके द्वारा संदाय में स्वैच्छिक रूप से विफलता का कोई सबूत न हो और उपलब्ध साधनों पर अत्यावश्यक खर्च मौजूद न हो जैसेकि कैंसर या अन्य गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए चिकित्सा बिल । इसलिए इस बाबत कोई लेश मात्र भी संदेह नहीं हो सकता कि जब धनीय डिक्री के आधार पर निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी के लिए कोई याचिका फाइल की जाती है तो न्यायालय निर्णीत ऋणी को अवसर प्रदान करेगा और इस बाबत जांच संचालित करेगा कि क्या निर्णीत ऋणी के पास डिक्री पारित किए जाने के उपरांत डिक्री की रकम या उसके किसी सारभूत भाग के संदाय के लिए पर्याप्त साधन हैं या थे और वह फिर भी उस रकम का संदाय करने से इनकार करता है या उपेक्षा करता है या उसने इनकार कर दिया है या उपेक्षा कर दी है और तत्पश्चात् सुविचारित आदेश पारित करता है ।

10. अगला प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या ऐसी कोई जांच निर्णीत ऋणी की उपस्थिति में या उसकी अनुपस्थिति में संचालित की जानी चाहिए ?

11. इस संबंध में प्रक्रिया, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 और नियम 40 द्वारा शासित होती है, इस प्रकार है :-

"37. कारागार में निरुद्ध किए जाने के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने के लिए निर्णीत ऋणी को अनुज्ञा देने की वैवेकिक शक्ति - (1) इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी, जहां धन के संदाय के लिए डिक्री का निष्पादन ऐसे निर्णीत ऋणी की जो आवेदन के अनुसरण में गिरफ्तार किए जाने के दायित्व के अधीन है, गिरफ्तारों और सिविल कारागार में निरोध के द्वारा करने के लिए आवेदन है वहां न्यायालय उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट निकालने के बदले उससे यह अपेक्षा करने वाली सूचना उसके नाम निकालेगा कि उस दिन को जो उस सूचना में विनिर्दिष्ट किया जाएगा, वह न्यायालय में उपसंजात हो और हेतुक दर्शित करे कि सिविल कारागार को उसे क्यों न सुपुर्द कर दिया जाए :

परंतु यदि न्यायालय का शपथपत्र द्वारा या अन्यथा यह समाधान हो जाता है कि यह संभाव्यता है कि निर्णीत ऋणी डिक्री के निष्पादन में विलंब करने के उद्देश्य से फरार हो जाए या न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं को छोड़ दे या उसके ऐसा करने का परिणाम यह होगा कि डिक्री के निष्पादन में विलंब होगा तो ऐसी सूचना देना आवश्यक नहीं होगा ।

(2) जहां सूचना के आज्ञानुवर्तन में उपसंजाति न की जाए वहां यदि डिक्रीदार ऐसा अपेक्षित करे तो न्यायालय निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी के वारंट निकालेगा ।

(40) सूचना के आज्ञानुवर्तन में या गिरफ्तारी के पश्चात् निर्णीत ऋणी के उपसंजात होने पर कार्यवाहियां - (1) जब निर्णीत ऋणी नियम 37 के अधीन निकाली गई सूचना के आज्ञानुवर्तन में न्यायालय के सामने उपसंजात होता है या धन के संदाय की डिक्री

के निष्पादन में गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् न्यायालय के सामने लाया जाता है तब न्यायालय डिक्रीदार को सुनने के लिए अग्रसर होगा और ऐसे सभी साक्ष्य लेगा जो निष्पादन के लिए अपने आवेदन के समर्थन में उसके द्वारा पेश किया जाए और तब निर्णीत ऋणी को हेतुक दर्शित करने का अवसर देगा कि वह सिविल कारागार को क्यों न सुपुर्द कर दिया जाए ।

(2) उपनियम (1) के अधीन या तो जांच की समाप्ति लंबित रहने तक न्यायालय स्वविवेकानुसार आदेश कर सकेगा कि निर्णीत ऋणी न्यायालय के अधिकारी की अभिरक्षा में निरुद्ध किया जाए या उसके द्वारा न्यायालय को समाधानप्रद रूप में इस बात की प्रतिभूति दिए जाने पर कि अपेक्षित किए जाने पर वह उपसंजात होगा न्यायालय उसे छोड़ सकेगा ।

(3) उपनियम (1) के अधीन जांच की समाप्ति पर न्यायालय धारा 51 के उपबंधों और इस संहिता के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए निर्णीत ऋणी के सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने का आदेश कर सकेगा और उस दशा में जब वह पहले से ही गिरफ्तारी में नहीं है उसे गिरफ्तार कराएगा :

परंतु निर्णीत ऋणी को डिक्री की तुष्टि करने का अवसर देने के लिए न्यायालय निरोध का आदेश करने के पहले निर्णीत ऋणी को न्यायालय के अधिकारी की अभिरक्षा में पंद्रह दिन से अनधिक विनिर्दिष्ट अवधि के लिए रहने दे सकेगा या उसके विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर उपसंजात होने के लिए, यदि डिक्री की तुष्टि उससे पहले ही न कर दी गई हो तो, उसके द्वारा न्यायालय को समाधानप्रद रूप से प्रतिभूति दिए जाने पर उसे छोड़ सकेगा ।

(4) इस नियम के अधीन छोड़ा गया निर्णीत ऋणी पुन: गिरफ्तार किया जा सकेगा ।

(5) जब न्यायालय उपनियम (3) के अधीन निरोध का आदेश न करे तब वह आवेदन को नामंजूर करेगा और यदि निर्णीत ऋणी गिरफ्तारी में हो तो उसको छोड़े जाने का निदेश देगा ।"

12. अत:, निर्णीत ऋणी के साधनों के संबंध में जांच के लिए अनुध्यात करने वाली संहिता की योजना को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 और 40 में पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया गया है । कोई डिक्री धारक, जो निर्णीत ऋणी को गिरफ्तार किए जाने और सिविल कारागार में उसको निरुद्ध किए जाने के द्वारा निष्पादन की ईप्सा करता है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 11क के निबंधनों के अनुसार उन आधारों को अभिकथित करते हुए शपथपत्र फाइल करेगा, जिन पर गिरफ्तारी के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया है । तत्पश्चात्, न्यायालय के समक्ष नियम 37 के अधीन दो विकल्प होंगे । यदि न्यायालय पूर्वोक्त शपथपत्र से संतुष्ट है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि निर्णीत ऋणी के डिक्री के निष्पादन को विलंबित करने के उद्देश्य से फरार हो जाने या न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता को छोड़ देने की संभाव्यता है, तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिए तुरंत उसकी उपस्थिति को न्यायालय के समक्ष सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ वारंट जारी कर सकता है या अन्यथा न्यायालय गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के बजाय निर्णीत ऋणी से उसके समक्ष उपस्थित होने और यह स्पष्ट करने की कि उसे सिविल कारागार में निरुद्ध क्यों नहीं किया जाना चाहिए की अपेक्षा करते हुए नोटिस जारी कर सकता है । तत्पश्चात्, सिविल प्रक्रिया संहिता का नियम 37(2) यह परिकल्पित करता है कि यदि निर्णीत ऋणी नोटिस के मतावलंबन में उपस्थित हो गया है, तो न्यायालय निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर देगा, यदि डिक्री धारक ऐसा ही चाहता है । अत:, न्यायालय निर्णीत ऋणी की उपस्थिति को उसे तलब करने के द्वारा या उसके विरुद्ध वारंट जारी करने के द्वारा सुनिश्चित कर सकता है । यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि नियम 37(1) या (2) के अधीन गिरफ्तारी का वारंट जारी किया जाना केवल निर्णीत ऋणी की उपस्थिति को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ है ताकि न्यायालय नियम 40 के अधीन जांच के लिए अग्रसर हो सके और उसको सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 और 55 के

निबंधनों के अनुसार सिविल कारागार में निरुद्ध किए जाने के लिए नहीं । इसलिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 के प्रक्रम पर न्यायालय को मामले के गुणागुण पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती, जैसाकि धारा 51 के परंतुक के अधीन परिकल्पित किया गया है । नियम 37 के अधीन गिरफ्तारी और धारा 51(ग) के अधीन निरोध के मध्य अंतर (i) **सुराबराकू पुटरय्या** बनाम **मद्दुकुरी वी. राजू**[1] और (ii) **पी. जी. रंगनाथ पदयाची** बनाम **मायावरम फाइनेंशियल कारपोरेशन लिमिटेड**[2] वाले मामले में विधिवत स्पष्ट किया गया है ।

13. तत्पश्चात्, नियम 40 यह अभिकथित करता है कि जब निर्णीत ऋणी या तो नियम 37 के अधीन जारी की गई नोटिस के अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, तो न्यायालय डिक्री धारक को सुनने के लिए अग्रसर होगा और निष्पादन याचिका के समर्थन में उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करेगा और तत्पश्चात् निर्णीत ऋणी को इस बाबत कारण दर्शित करने का एक अवसर प्रदान करेगा कि उसको सिविल कारागार में क्यों न निरुद्ध किया जाए । पुन:, न्यायालय पूर्वोक्त जांच के लंबित रहने के दौरान अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए निर्णीत ऋणी को न्यायालय के एक अधिकारी की अभिरक्षा में निरुद्ध रखे जाने या उसकी अनुपस्थिति की बाबत, जब भी अपेक्षित हो, न्यायालय के समाधान के अनुसार उसके द्वारा प्रतिभूति प्रस्तुत किए जाने के आधार पर उसको निर्मुक्त किए जाने का आदेश पारित करेगा । न्यायालय जांच की समाप्ति पर धारा 51 के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए निर्णीत ऋणी को सिविल कारागार में निरुद्ध रखे जाने का आदेश पारित करेगा और उस स्थिति में उसको गिरफ्तार करा देगा, यदि वह पहले से गिरफ्तार नहीं है । जब न्यायालय निरोधादेश पारित नहीं करता, तो वह निष्पादन याचिका को नामंजूर कर देगा और

---

[1] 1964 (2) आंध्र वीकल रिपोर्टर 38 (डी. वी.)

[2] ए. आई. आर. 1974 मद्रास 1 = मनु./टी. एन./0107/1974.

यदि निर्णीत ऋणी गिरफ्तार है, तो उसको निर्मुक्त किए जाने के लिए निर्देशित कर देगा ।

14. अत: उपरोक्त दोनों नियमों, विशेष रूप से नियम 40, का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किए जाने पर यह स्पष्ट अर्थ निकलता है कि नियम 40 के अधीन अनुध्यात जांच निर्णीत ऋणी की उपस्थिति में संचालित की जाएगी । ऐसी आज्ञा इस तथ्य के प्रकाश में समझे जाने योग्य है कि कभी-कभी जांच के परिणामस्वरूप निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी और सिविल कारागार में उसका निरोध हो जाता है जिसके कारण उसका व्यैक्तिक स्वातंत्र्य प्रभावित होता है । इससे एक बात और स्पष्ट हो जाता है कि निर्णीत ऋणी की अनुपस्थिति में एकपक्षीय जांच अनपेक्षित होती है । ऐसा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **काशी सुब्बैय्याह मुदाली** बनाम **काशी वेंक्रस्वामी मुदाली**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । उस मामले में डिक्री धारक ने निष्पादन याचिका सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37 के अधीन निर्णीत ऋणी की गिरफ्तारी और निरोध के लिए फाइल की थी । निष्पादन न्यायालय ने निर्णीत ऋणी को सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 37(1) के अधीन नोटिस जारी किया, किंतु उसकी अनुपस्थिति के कारण एकपक्षीय रूप से कार्यवाही की और मामले को डिक्री धारक द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए नियत कर दिया । तत्पश्चात् उसका परीक्षण किया गया और न्यायालय ने अभिलेख के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि निर्णीत ऋणी के पास डिक्रित रकम का संदाय करने के लिए पर्याप्त साधन हैं, किंतु फिर भी वह संदाय करने की उपेक्षा कर रहा है और तद्नुसार न्यायालय ने निर्णीत ऋणी को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के लिए उसके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया, जिस आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती दी गई । उस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया :–

"16. स्वीकृतत:, वर्तमान मामले में न्यायालय ने इस मामले

---

[1] 2002 (3) ए. एल. टी. 240 = मनु./ए. पी./1397/2001 = ए. आई. आर. 2002 (एन. ओ. सी.) 118 (ए. पी.).

के याची के पास उपलब्ध साधनों पर कब्जे के बारे में एकपक्षीय जांच की है और एकपक्षीय निष्कर्ष अभिलिखित किया है । निष्पादन न्यायालय द्वारा उक्त कार्रवाई आदेश 21 के अभिव्यक्त या असंदिग्ध उपबंधों, विशेष रूप से नियम 40 के विपरीत थी । निष्पादन न्यायालय द्वारा समय-समय पर पत्रावली पर पारित आदेशों से यह उपदर्शित होता है कि उन्होंने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 40 या धारा 55 की अपेक्षा को ध्यान में नहीं रखा । निष्पादन न्यायालय ने पुनरीक्षाधीन आदेश को पारित करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता के अभिव्यक्त उपबंधों का अनुसरण नहीं किया है । यह आदेश तथ्यत: या विधित: मान्य नहीं ठहराया जा सकता । तद्नुसार, इस आदेश को अपास्त किया जाता है और सिविल पुनरीक्षण याचिका मंजूर की जाती है । तथापि, लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।"

15. जब हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों का परिशीलन उपरोक्त निष्कर्षों और राष्ट्रपति के आदेशों के प्रकाश में किया जाता है, तो इस मामले में निर्णीत ऋणी 3 और 4 न्यायालय में कुछ समय तक उपस्थित रहने के पश्चात् अनुपस्थित हो गए थे और निष्पादन न्यायालय उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही करने के लिए अग्रसर हुआ और मामले को डिक्री धारक के साक्ष्य के लिए नियत कर दिया ताकि वह निर्णीत ऋणियों के साधानों को साबित कर सके । यहां पर यह कहा जाना आवश्यक है निष्पादन न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 40 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया के प्रति पूर्णत: अनभिज्ञ था जिसका यह अर्थ निकलता है कि साधानों के संबंध में जांच निर्णीत ऋणी की उपस्थिति में की जानी चाहिए । ऐसा प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने डिक्री धारक द्वारा न्यायालय से सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 37(2) के निबंधनों के अनुसार गिरफ्तारी का वारंट जारी किए जाने के अनुरोध के बावजूद गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के बजाय यह अभिनिर्धारित किया कि डिक्री धारक निर्णीत ऋणी के साधनों को साबित कर पाने में विफल रहा है और अंतत: निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया, जो विधिक आज्ञा के विरुद्ध पूर्णत: त्रुटिपूर्ण आदेश है ।

16. परिणामस्वरूप, सिविल पुनरीक्षण याचिका मंजूर की जाती है और 2017 की निष्पादन याचिका संख्या 54 में पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और परिणामस्वरूप निष्पादन याचिका को पत्रावली पर इस निर्देश के साथ पुनर्स्थापित किया जाता है कि निष्पादन न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 37(2) के निबंधनों के अनुसार निर्णीत ऋणी 3 और 4 के विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी करे और उनकी उपस्थिति को सुनिश्चित करने के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 40 के निबंधनों के अनुसार जांच संचालित करे और शीघ्रातिशीघ्र गुणागुण पर उचित आदेश पारित करे । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

17. इस सिविल पुनरीक्षण याचिका में लंबित प्रकीर्ण याचिकाएं यदि कोई हों बंद की जाती हैं ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

(2019) 2 सि. नि. प. 452 **इलाहाबाद**

मुरादाबाद डेवलपमेंट अथार्टी

बनाम

श्री साई सिद्धी डेवलपर्स

तारीख़ 25 फरवरी, 2019

(2018 की सिविल रिट याचिका सं. 9355)

न्यायमूर्ति (श्रीमती) सुनीता अग्रवाल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 और 2 – अंतरिम व्यादेश – अस्थायी व्यादेश के लिए आवेदन के लंबन के दौरान अंतरिम आदेश की मंजूरी – विधिमान्यता – न्यायालय विवादग्रस्त संपत्ति के संबंध में संपत्ति को नष्ट करने से रोकने,

नुकसान पहुंचाने अंतरण करने और विक्रीत करने से रोकने, संपत्ति को हटाने या वादी को बेकब्जा करने से रोकने के प्रयोजन के लिए कोई आदेश करने के लिए सशक्त है ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा आदेश 43, नियम 1(द) – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – वाद के लंबन के दौरान एकपक्षीय अंतरिम आदेश – न्यायालय वाद के लंबन के दौरान विवादग्रस्त संपत्ति को क्षय होने से बचाने, नुकसान पहुंचने से बचाने, अंतरित या विक्रीत करने से रोकने के लिए अंतरिम आदेश पारित कर सकता है तथापि, ऐसे आदेश पारित करने के लिए समुचित कारण अभिलिखित किए जाने चाहिए ।

आवेदन द्वारा वादी ने यह अभिवाक् किया था कि प्रतिवादी तारीख 28 अगस्त, 2018 के अंतरिम व्यादेश का अनुपालन नहीं कर रहे हैं और वादी द्वारा किए गए क्रियाकलापों में अवैध रूप से हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे हैं । प्रतिवादियों ने तारीख 3 सितंबर, 2018 को अंतिरम व्यादेश को मानने से इनकार कर दिया था । उक्त आवेदन में यह प्रकट नहीं किया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा ऐसी क्या कार्रवाई की गई थी कि जो तारीख 28 अगस्त, 2018 को मंजूर किए गए अंतरिम व्यादेश के अननुपालन या अतिक्रमण के बराबर हो । वर्तमान याचिका तारीख 28 अगस्त, 2018 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने इस संप्रेक्षण के साथ लंबित आवेदन 6-ग का निपटान करते हुए वादी के हक में अंतरिम आदेश पारित किया है कि आवेदन 6-ग (अस्थायी व्यादेश का मामला) को विनिश्चित करने के लिए प्रश्नगत स्थल के मौके की निरीक्षण की आवश्यकता है । अत: वादी को अमीन की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए कार्रवाई करने (पैरवी करने) का निदेश दिया गया और प्रतिवादियों को वाद संपत्ति में हस्तक्षेप करने और उसके संबंध में कोई अवैध क्रियाकलाप करने जो कि वादी के हित के प्रतिकूल जाता हो, से रोकते हुए अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया है । याचिका में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 के नियम 1 में यथाउल्लिखित उपबंधों का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि विचारण न्यायालय अर्थात वह न्यायालय जिसके समक्ष वाद संस्थित किया गया है, वाद संपत्ति को बर्बाद होने, नुकसान पहुंचाने या वाद के किसी पक्षकार द्वारा संपत्ति का अंतरण करने से संरक्षित करने के लिए अस्थायी व्यादेश मंजूर करने के लिए सशक्त है अथवा यदि प्रतिवादी अपने विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा कपट-प्रवंचना करने की दृष्टि से उसकी संपत्ति को हटाना या निपटान करना चाहते हैं अथवा प्रतिवादी वादी को बेकब्जा करने की धमकी देता है या अन्यथा वाद में विवादग्रस्त किसी संपत्ति के संबंध में वादी को नुकसान पहुंचाने की धमकी देते हैं तो न्यायालय अस्थायी व्यादेश मंजूर करके उसे संरक्षित करने के लिए सशक्त है । अत: वाद का विचारण करने वाला न्यायालय अस्थायी व्यादेश मंजूर करने या ऐसे किसी कार्य से रोकने के लिए सशक्त है अथवा संपत्ति को बर्बाद करने, नुकसान पहुंचाने, अंतरण करने, विक्रीत करने, हटाने या संपत्ति का निपटान करने या वादी को बेकब्जा करने अथवा वाद में विवादग्रस्त किसी संपत्ति में वादी को अन्यथा क्षति पहुंचाने से रोकने और निरुद्ध करने के प्रयोजन के लिए ऐसा कोई आदेश करने, जैसा कि वह उचित समझे, वाद का निपटान करने या अग्रिम आदेश करने तक कोई आदेश करने के लिए सशक्त है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश मंजूर करने से संबंधित विधि स्पष्ट रूप से सुस्थापित है । व्यादेश मंजूर करने वाले न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह तीन आधारभूत सिद्धांतों पर विचार करे, अर्थात् (क) प्रथमदृष्ट्या मामला ; (ख) सुविधा और असुविधा का संतुलन; और (ग) अपूर्णनीय नुकसान और क्षति और व्यादेश मंजूर करते समय पक्षकारों के आचरण पर भी विचार किया जाना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश की मंजूरी के उपर्युक्त सिद्धांत को दृष्टिगत करते हुए यह सुसंगत होगा कि तारीख 28 अगस्त, 2018 के आदेश पर विचार किया जाए जिसे वर्तमान याचिका में आक्षेपित किया गया है । (पैरा 23, 24, 25 और 30)

पैरा 7 में किया गया यह संप्रेक्षण कि 'एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश' या 'सूचना के पश्चात् अंतिरम व्यादेश', या आवेदन 6-ग को विनिश्चित करने के पश्चात् अंतिम व्यादेश, सभी आदेश अंतरिम व्यादेश की प्रकृति के हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 में निर्दिष्ट हैं और ऐसा कोई आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1(द) के अधीन अपीलनीय है, अत: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश की मंजूरी के समय विधि की स्थिति पर उस मामले में विचार नहीं किया गया है । जहां तक उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का संबंध है जिसमें आदेश 39, नियम 1 और 2 के आवेदन के लंबन के दौरान अस्थायी व्यादेश का आदेश मंजूर किया गया था और आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन प्रथम अपील ग्रहण की गई थी, ऐसी तथ्य और परिस्थितियां इस न्यायालय के समक्ष मौजूद नहीं हैं । खंड न्यायपीठ के निर्णय में उक्त विवाद्यकों के बारे में कोई चर्चा नहीं की गई है । उपर्युक्त आदेश का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विचारण न्यायालय ने मात्र वादी द्वारा प्रकथन किए गए दावे को और उसके द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों पर विचार करके और इस बात पर विचार करके कि प्रतिवादी ने अस्थायी व्यादेश आवेदन के संबंध में कोई लिखित कथन या आक्षेप फाइल नहीं किया है, यह मत व्यक्त किया है कि स्थल की सही स्थिति के संबंध में कोई रिपोर्ट प्राप्त किए बिना सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन फाइल किए गए आवेदन 6-ग अर्थात् अस्थायी व्यादेश आवेदन को विनिश्चित करना संभव नहीं है । इसके पश्चात् न्यायालय ने अमीन की रिपोर्ट मंगाई और अमीन की रिपोर्ट प्राप्त होने तक वादी को संरक्षण प्रदान कर दिया । विचारण न्यायालय द्वारा अंतरिम व्यादेश पारित करने के लिए जिसके द्वारा प्रतिवादी को वाद संपत्ति से संबंधित कोई अवैध कार्य करने से रोका गया है, कोई चर्चा नहीं की गई है या कारण नहीं दिए गए हैं । इस न्यायालय के सुविचारित मतानुसार उक्त आदेश अंतर्वर्ती आदेश के अर्थान्तर्गत अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश के अन्तर्गत नहीं आएगा । अत: उक्त आदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त अस्थायी

व्यादेश का आदेश भले ही यह अंतर्वर्ती हो, इस प्रकार का है जिससे कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन अपील किए जाने योग्य है । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए यह उल्लेखनीय है कि विचारण न्यायालय ने तारीख 28 अगस्त, 2018 को मंजूर किया गया अंतरिम व्यादेश मात्र इस तथ्य के आधार पर मंजूर किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 2 के अधीन आवेदन उसके समक्ष लंबित है । अत: विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह अमीन की रिपोर्ट, यदि फाइल की गई है, पर पक्षकारों द्वारा किए गए आक्षेपों पर विचार करने के पश्चात् अस्थायी आवेदन का विनिश्चय करे । किसी भी दशा में किसी भी पक्षकार को किसी भी आधार पर कोई स्थगन मंजूर नहीं किया जाएगा । (पैरा 19, 31, 32, 33, 35 और 39)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] 2017 (125) आल. एल. आर. 411 :
शिखा वाधवा बनाम **जिला न्यायाधीश, लखनऊ और अन्य** ; 13, 15, 21

[2012] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2448 =
(2012) 6 एस. सी. सी. 792 :
बैस्ट सेलर्स रिटेल (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम **आदित्य बिड़ला नूवो लिमिटेड और अन्य** ; 27

[2012] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 437 =
(2012) 1 एस. सी. सी. 735 :
मैकर्स डेवलपमेंट सर्विसिज प्राइवेट लिमिटेड बनाम **एम. विश्वेशरय्या इंडस्ट्रीयल रिसर्च एंड डेवलपमेंट सेंटर** ; 25

[2010] 2010 (5) ए. एल. जे. 601 = 2010 (5) ए. डी. जे. 731 (खंड न्यायपीठ) :
कोस्मोपोलीटन क्लब बनाम **मैसर्स विनायक कृपा इनफरामार्ट कंपनी (प्रा.) लिमिटेड** ; 13, 15, 18

[2010] (2010) 15 एस. सी. सी. 539 :
रय्यत शिक्षण संस्थान बनाम **सुनील शिवा गायकवाड़** ; 28

[2005] 2005 (13) एस. सी. सी. 505 =
ए. आई. आर. आनलाइन 2005 एस. सी. 426 :
बी. एस. एन. एल. बनाम **प्रेम चंद प्रेमी** । 26

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की सिविल रिट याचिका सं. 9355.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सतीश चतुर्वेदी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राम मिलन मिश्रा

न्यायमूर्ति (श्रीमती) सुनीता अग्रवाल – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की सहमति से वर्तमान याचिका को ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही अंतिम रूप से विनिश्चित किया जा रहा है । किसी प्रति-शपथपत्र और प्रत्युत्तर शपथपत्र की आवश्यकता नहीं है जैसा कि काउंसेलों द्वारा स्वीकार किया गया है ।

2. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया ।

3. वर्तमान याचिका तारीख 28 अगस्त, 2018 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने इस संप्रेक्षण के साथ लंबित आवेदन 6-ग का निपटान करते हुए वादी के हक में अंतरिम आदेश पारित किया है कि आवेदन 6-ग (अस्थायी व्यादेश का मामला) को विनिश्चित करने के लिए प्रश्नगत स्थल के मौके की निरीक्षण की आवश्यकता है । अत: वादी को अमीन की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए कार्रवाई करने (पैरवी करने) का निदेश दिया गया और प्रतिवादियों को वाद संपत्ति में हस्तक्षेप करने और

उसके संबंध में कोई अवैध क्रियाकलाप करने जो कि वादी के हित के प्रतिकूल जाता हो, से रोकते हुए अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया है ।

4. विचारण न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि प्रतिवादियों की ओर से इस न्यायालय के निदेशों के अनुपालन अर्थात् पैरवी करने में कोई विलंब करने की दशा में या अस्थायी व्यादेश के निपटान में विलंब करने पर इस बात की स्वतंत्रता होगी कि वादी के हक में मंजूर किए गए अंतरिम व्यादेश पर पुन: विचार किया जाए । इसके अतिरिक्त अस्थायी व्यादेश के निपटान के लिए और लिखित कथन फाइल करने के लिए तारीख 20 सितंबर, 2018 नियत की गई थी ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह सूचित किया गया है कि विचारण न्यायालय में अमीन की रिपोर्ट तारीख 1 सितंबर, 2018 को फाइल की गई है । किसी भी पक्षकार का काउंसेल न्यायालय को यह बताने की स्थिति में नहीं है कि क्या वादी अथवा प्रतिवादियों ने अमीन की रिपोर्ट पर कोई आक्षेप (आपत्ति) फाइल की है या नहीं ।

6. इसके अतिरिक्त आदेश पत्रक के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि वादी ने तारीख 4 सितंबर, 2018 को शपथपत्र 34-ग के साथ एक आवेदन 33-ग फाइल किया था और विचारण न्यायालय ने उसी दिन अर्थात् तारीख 4 सितंबर, 2018 को इसे विनिश्चित कर दिया ।

7. उक्त आवेदन द्वारा वादी ने यह अभिवाक् किया था कि प्रतिवादी तारीख 28 अगस्त, 2018 के अंतरिम व्यादेश का अनुपालन नहीं कर रहे हैं और वादी द्वारा किए गए क्रियाकलापों में अवैध रूप से हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे हैं । प्रतिवादियों ने तारीख 3 सितंबर, 2018 को अंतिरम व्यादेश को मानने से इनकार कर दिया था । उक्त आवेदन में यह प्रकट नहीं किया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा ऐसी क्या कार्रवाई की गई थी कि जो तारीख 28 अगस्त, 2018 को मंजूर किए गए अंतरिम-व्यादेश के अननुपालन या अतिक्रमण के बराबर हो ।

8. जो भी स्थिति हो, विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन शक्तियों का अवलंब लेकर आवेदन 33-ग मंजूर किया था और प्रशासनिक प्राधिकारियों अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट और ज्येष्ठ पुलिस अधीक्षक, मुरादाबाद को यह सुनिश्चित करने का निदेश दिया कि तारीख 28 अगस्त, 2018 के अंतरिम व्यादेश (आदेश) का अनुपालन कराया जाए ।

9. अभिलेख से यह भी प्रकट होता है कि विचारण न्यायालय ने तारीख 20 सितंबर, 2018 को दोनों पक्षकारों को अमीन की रिपोर्ट कागज सं. 35-ग पर अपने-अपने आक्षेप फाइल करने के लिए समय दिया था ।

10. याची/प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह सूचना दी गई है कि तारीख 29 सितंबर, 2018 को अस्थायी व्यादेश आवेदन 6-ग के विरुद्ध लिखित कथन/आक्षेप फाइल किया गया है । तारीख 10 अक्तूबर, 2018, 6 नवंबर, 2018 और तारीख 14 दिसंबर, 2018 के आदेश-पत्रकों से यह उपदर्शित होता है कि पीठासीन अधिकारी के छुट्टी पर होने के कारण मामले में सुनवाई नहीं की जा सकी ।

11. तारीख 14 दिसंबर, 2018 के पश्चात् का आदेश-पत्रक अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है । किसी भी पक्षकार के काउंसेल यह बताने की स्थिति में नहीं हैं कि आवेदन 6-ग/अस्थायी व्यादेश आवेदन को 5 मास से भी अधिक की अवधि तक क्यों विनिश्चित नहीं किया जा सका । उनके द्वारा दी गई सूचना के अनुसार आज तारीख 25 फरवरी, 2019 अस्थायी व्यादेश आवेदन के निपटान के लिए नियत की गई है ।

12. उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए मामले के गुण-दोष पर विचार करने से पूर्व यह उचित होगा कि प्रत्यर्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आक्षेपों पर विचार किया जाए ।

13. वादी के विद्वान् अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **कोस्मोपोलीटन क्लब** बनाम **मैसर्स विनायक कृपा**

इनफरामार्ट कंपनी (प्रा.) लिमिटेड[1] वाले मामले के निर्णय और **शिखा वाधवा** बनाम **जिला न्यायाधीश, लखनऊ और अन्य**[2] वाले मामले में एक समन्वय न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन प्रकीर्ण अपील तारीख 28 अगस्त, 2018 के अंतरिम व्यादेश की मंजूरी को आक्षेपित करते हुए आदेश के विरुद्ध ग्रहण किए जाने योग्य होगी और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

14. यह दलील दी गई है कि अस्थायी व्यादेश के लंबन के दौरान पारित कोई अंतर्वर्ती आदेश अस्थायी व्यादेश के अर्थान्तर्गत आता है क्योंकि यह सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 के अधीन पारित किया गया है । चूंकि आदेश के विरुद्ध प्रथम अपील का उपचार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन उपबंधित किया गया है इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 के अधीन पारित कोई आदेश, चाहे वह "अंतर्वर्ती आदेश" हो या "अस्थायी व्यादेश", सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन अपीलनीय है ।

15. इस संबंध में खंड न्यायपीठ के संप्रेक्षण और **कोस्मोपोलीटन क्लब** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 7 में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश और **शिखा वाधवा** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 10 और 11 में किए गए संप्रेक्षणों का निर्देश किया जा सकता है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

> "7. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 39, नियम 1 ऐसे मामलों के बारे में उपबंध करता है जिनमें अस्थायी व्यादेश मंजूर किया जा सकता है । आदेश 39, नियम 1 के अधीन अस्थायी व्यादेश एकपक्षीय अस्थायी व्यादेश द्वारा मंजूर किया जा सकता है अथवा सूचना की तामील के पश्चात् व्यादेश मंजूर किया जा सकता

---

[1] 2010 (5) ए. एल. जे. 601 = 2010 (5) ए. डी. जे. 731 (खंड न्यायपीठ).

[2] 2017 (125) आल. एल. आर. 411.

है अथवा आवेदन 6-ग के अंतिम निपटान के समय व्यादेश मंजूर किया जा सकता है । आदेश 39, नियम 1 अस्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए शक्ति का स्रोत है । अस्थायी व्यादेश इस रीति में बांटा या विभाजित नहीं किया जा सकता जैसा कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है । आदेश 39, नियम 1 के अधीन अस्थायी व्यादेश के बारे में कोई आदेश जो आक्षेपित आदेश द्वारा मंजूर किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन पारित किया गया है क्योंकि आदेश 39, नियम 1 के अधीन विनिर्दिष्ट उपबंध मौजूद है । न्यायालय ने आवेदन 6-ग पर स्वयं आदेश पारित किया और आवेदन 6-ग के लिए 29 अप्रैल, 2010 तारीख नियत की थी । अत: आवेदन 6-ग पर अर्थात् अस्थायी व्यादेश के आवेदन पर पारित आदेश तारीख 29 अप्रैल, 2010 का आदेश है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि यह अपील, आवेदन 6-ग जिस पर विचार किया जाना है, का निपटान करने के आदेश के विरुद्ध ही ग्रहण की जाएगी । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि आदेश 43, नियम 1(द) आदेश 39 के नियम 1, नियम 2, नियम 2(क), नियम 4 या नियम 10 के अधीन आदेश के विरुद्ध अपील का उपबंध करता है । नियम 1 के अधीन आदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह आवेदन 6-ग के निपटान का अंतिम आदेश है । ऐसे किसी आदेश के बारे में ऐसा कोई निर्वचन नहीं किया जा सकता जो आदेश 39, नियम 1 के अधीन निर्दिष्ट किए जाने योग्य है । आदेश 39, नियम 4 के अधीन किसी व्यादेश की मंजूरी के पश्चात् व्यादेश (आदेश) को निर्मोचित, परिवर्तित या अपास्त किया जा सकता है । आवेदन 6-ग का निपटान करने के पश्चात् पारित एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश या सूचना के पश्चात् पारित अंतरिम व्यादेश दोनों ही अंतरिम व्यादेश हैं और आदेश 39, नियम 1 के अधीन निर्दिष्ट किए जाने योग्य हैं और इसलिए इस दलील में कोई सार नहीं है कि आवेदन 6-ग को अंतिम रूप से विनिश्चित करने वाला व्यादेश अपीलनीय है । अत: प्रत्यर्थी का प्रारंभिक आक्षेप स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

10. आदेश 39 को जो अस्थायी व्यादेशों और अंतर्वर्ती आदेशों के बारे में उपबंध करता है दो भागों में विभाजित किया जाता है – (1) अस्थायी व्यादेश और (2) अंतर्वर्ती व्यादेश । नियम 1 से 5 अस्थायी व्यादेशों के शीर्षक के अधीन आते हैं जबकि नियम 6 से 10 अंतर्वर्ती आदेशों के शीर्षक के अधीन आते हैं । नियम 1 ऐसे मामलों के बारे में उपबंध करता है जिनमें अस्थायी व्यादेश मंजूर किया जा सकता है और नियम 2 दोहराए जाने को रोकने के लिए अथवा सतत् रूप से भंग को रोकने के लिए व्यादेश की मंजूरी के बारे में उपबंध करता है । नियम 2(क) व्यादेश के अननुपालन या भंग के परिणामों के बारे में उपबंध करता है । नियम 3 उस प्रक्रिया के बारे में उपबंध करता है जिसका न्यायालय द्वारा व्यादेश को मंजूर करने से पूर्व अनुसरण किया जाएगा । नियम 3(क) न्यायालय पर ऐसे मामलों में उक्त नियम में उल्लिखित समय के भीतर अस्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए आवेदन का अंतिम रूप से निपटान करने के लिए कर्तव्य डालने के बारे में उपबंध करता है जहां विरोधी पक्षकारों को सूचना दिए बिना व्यादेश मंजूर किया गया है । नियम 4 यह उपबंध करता है कि व्यादेश के किसी आदेश को निर्मोचित, परिवर्तित या अपास्त किया जा सकता है और नियम 5 यह उपबंध करता है कि किसी निगम को निदेशित कोई व्यादेश इसके अधिकारियों पर आबद्धकर है ।

11. 'अंतर्वर्ती' पद से अनंतिम, अंतरिम या अस्थायी अभिप्रेत है किन्तु अंतिम नहीं । समान रूप में 'अस्थायी व्यादेश' पद में 'अस्थायी' पद से अनंतिम और अंतरिम अभिप्रेत है और इसलिए अस्थायी व्यादेश के आदेशों को अंतिम प्रकृति का नहीं माना जा सकता । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के साथ पठित धारा 104 के संयुक्त परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि आदेशों की प्रकृति में 'अंतरिम', 'अनंतिम' या 'अस्थायी' लक्षणों के होते हुए भी आदेश 39 के नियम 1, नियम 2, नियम 2(क), नियम 4 या नियम 10 के अधीन किसी आदेश के विरुद्ध अपील ग्रहण की जा सकेगी । यदि ऐसे आदेश नियम 1,

नियम 2, 2(क), 4 और 10 के अधीन पारित किए जाते हैं तो वे स्पष्टतया अपीलनीय बन जाएंगे । आदेश 39 के अधीन किया गया व्यादेश का कोई एकपक्षीय आदेश या तो नियम 1 अथवा नियम 2 के अधीन आएगा । अत: अस्थायी व्यादेश का कोई एकपक्षीय व्यादेश, चाहे वह अनंतिम हो, अस्थायी हो या अंतरिम हो और जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और नियम 2 के अधीन किया गया हो, अपीलनीय है ।"

16. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि तारीख 28 अगस्त, 2018 के आदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया है क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और नियम 2 के अधीन कोई अंतर्वर्ती आदेश या अस्थायी व्यादेश का अंतिम आदेश पारित करने से पूर्व संबंधित न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होगा कि अंतरिम व्यादेश की मंजूरी के लिए तीन संघटक अर्थात् (क) प्रथमदृष्ट्या मामला ; (ख) सुविधा का संतुलन और (ग) वादी द्वारा अपूर्णनीय नुकसान या क्षति साबित की गई है । न्यायालय द्वारा इन तीनों कारकों पर विचार किए बिना कोई अस्थायी व्यादेश का आदेश चाहे वह अंतर्वर्ती हो या अंतिम, मंजूर नहीं किया जा सकता । अत: यह कहा जा सकता है कि तारीख 28 अगस्त, 2018 का आक्षेपित आदेश केवल सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन विचारण न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति के प्रयोग में पारित किया गया है ।

17. अत: यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन अपीलनीय है ।

18. इस न्यायालय को उपर्युक्त दलील पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि **कोस्मोपोलीटन क्लब** (उपरोक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा किए गए संप्रेक्षण को वर्तमान मामले में लागू मत के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता क्योंकि उक्त मामला उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विनिश्चित किया गया है । उस मामले में

प्रथम अपील न्यायालय ने अपील की ग्राह्यता के संबंध में प्रारंभिक आक्षेप को खारिज कर दिया था ।

19. पैरा 7 में किया गया यह संप्रेक्षण कि 'एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश' या 'सूचना के पश्चात् अंतिरम व्यादेश', या आवेदन 6-ग को विनिश्चित करने के पश्चात् अंतिम व्यादेश, सभी आदेश अंतरिम व्यादेश की प्रकृति के हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 में निर्दिष्ट हैं और ऐसा कोई आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1(द) के अधीन अपीलनीय है, अत: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश की मंजूरी के समय विधि की स्थिति पर उस मामले में विचार नहीं किया गया है । जहां तक उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का संबंध है जिसमें आदेश 39, नियम 1 और 2 के आवेदन के लंबन के दौरान अस्थायी व्यादेश का आदेश मंजूर किया गया था और आदेश 43 नियम 1(द) के अधीन प्रथम अपील ग्रहण की गई थी, ऐसी तथ्य और परिस्थितियां इस न्यायालय के समक्ष मौजूद नहीं हैं । खंड न्यायपीठ के निर्णय में उक्त विवाद्यकों के बारे में कोई चर्चा नहीं की गई है ।

20. उपर्युक्त के संबंध में याची/प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि आदेश 39, नियम 1 के अधीन आवेदन (अस्थायी व्यादेश आवेदन) के निपटान तक वादी के हक में मंजूर किया गया किसी भी प्रकार का अंतिम संरक्षण सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 के अधीन अस्थायी व्यादेश के अर्थान्तर्गत आता है, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

21. इसी प्रकार की स्थिति **शिखा वाधवा** (उपरोक्त) वाले मामले में समन्वय न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय में भी उपदर्शित होती है ।

22. यहां सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 में यथाउल्लिखित उपबंधों को उद्धृत करना उपयोगी होगा :-

> "1. **वे दशाएं जिनमें अस्थायी व्यादेश दिया जा सकेगा** - जहां किसी वाद में शपथपत्र द्वारा या अन्यथा यह साबित कर दिया जाता है कि -

(क) वाद में विवादग्रस्त किसी सम्पत्ति के बारे में यह खतरा है कि वाद का कोई भी पक्षकार उसका दुर्व्ययन करेगा, उसे नुकसान पहुंचाएगा या अन्य संक्रांत करेगा या डिक्री के निष्पादन में उसका सदोष विक्रय कर दिया जाएगा, अथवा

(ख) प्रतिवादी अपने लेनदारों को कपट-वंचित करने की दृष्टि से अपनी सम्पत्ति को हटाने या व्ययनित करने की धमकी देता है या आशय रखता है,

(ग) प्रतिवादी वादी को वाद में विवादग्रस्त किसी सम्पत्ति से बेकब्जा करने की या वादी को उस सम्पत्ति के संबंध में अन्यथा क्षति पहुंचाने की धमकी देता है, वहां न्यायालय ऐसे कार्य को अवरुद्ध करने के लिए आदेश द्वारा अस्थायी व्यादेश दे सकेगा या सम्पत्ति को दुर्व्यनित किए जाने, नुकसान पहुंचाए जाने, अन्य संक्रांत किए जाने, विक्रय किए जाने, हटाए जाने या व्ययनित किए जाने से अथवा वादी को वाद में विवादग्रस्त सम्पत्ति से बेकब्जा करने या वादी को उस सम्पत्ति के संबंध में अन्यथा क्षति पहुंचाने से रोकने और निवारित करने के प्रयोजन से ऐसे अन्य आदेश जो न्यायालय ठीक समझे, तब तक के लिए कर सकेगा जब तक उस वाद का निपटारा न हो जाए या जब तक अतिरिक्त आदेश न दे दिए जाएं ।

2. **भंग की पुनरावृत्ति या जारी रखना अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश** – (1) संविदा भंग करने से या किसी भी प्रकार की अन्य क्षति करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करने के किसी भी वाद में, चाहे वाद में प्रतिकर का दावा किया गया हो या न किया गया हो, वादी प्रतिवादी को परिवादित संविदा भंग या क्षति करने से या कोई भी संविदा भंग करने से या तदरूप क्षति करने से, जो उसी संविदा से उद्भूत होती हो या उसी सम्पत्ति या अधिकार से संबंधित हो, अवरुद्ध करने के अस्थायी व्यादेश के लिए न्यायालय से आवेदन, वाद प्रारंभ होने के पश्चात् किसी भी समय और निर्णय के पहले या पश्चात् कर सकेगा ।

(2) न्यायालय ऐसा व्यादेश, ऐसे व्यादेश की अवधि के बारे में, लेखा रखने के बारे में, प्रतिभूति देने के बारे में ऐसे निबंधनों पर, या अन्यथा, जो न्यायालय ठीक समझे, आदेश द्वारा दे सकेगा ।"

23. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 के नियम 1 में यथा उल्लिखित उपबंधों का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि विचारण न्यायालय अर्थात वह न्यायालय जिसके समक्ष वाद संस्थित किया गया है, वाद संपत्ति को बर्बाद होने, नुकसान पहुंचाने या वाद के किसी पक्षकार द्वारा संपत्ति का अंतरण करने से संरक्षित करने के लिए अस्थायी व्यादेश मंजूर करने के लिए सशक्त है अथवा यदि प्रतिवादी अपने विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा कपट-प्रवंचना करने की दृष्टि से उसकी संपत्ति को हटाना या निपटान करना चाहते हैं अथवा प्रतिवादी वादी को बेकब्जा करने की धमकी देता है या अन्यथा वाद में विवादग्रस्त किसी संपत्ति के संबंध में वादी को नुकसान पहुंचाने की धमकी देते हैं तो न्यायालय अस्थायी व्यादेश मंजूर करके उसे संरक्षित करने के लिए सशक्त है ।

24. अत: वाद का विचारण करने वाला न्यायालय अस्थायी व्यादेश मंजूर करने या ऐसे किसी कार्य से रोकने के लिए सशक्त है अथवा संपत्ति को बर्बाद करने, नुकसान पहुंचाने, अंतरण करने, विक्रीत करने, हटाने या संपत्ति का निपटान करने या वादी को बेकब्जा करने अथवा वाद में विवादग्रस्त किसी संपत्ति में वादी को अन्यथा क्षति पहुंचाने से रोकने और निरुद्ध करने के प्रयोजन के लिए ऐसा कोई आदेश करने, जैसा कि वह उचित समझे, वाद का निपटान करने या अग्रिम आदेश करने तक कोई आदेश करने के लिए सशक्त है ।

25. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश मंजूर करने से संबंधित विधि स्पष्ट रूप से सुस्थापित है । व्यादेश मंजूर करने वाले न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह तीन आधारभूत सिद्धांतों पर विचार करे, अर्थात् (क) प्रथम दृष्ट्या मामला ; (ख) सुविधा और असुविधा का संतुलन ; और (ग) अपूर्णनीय नुकसान और क्षति और व्यादेश मंजूर करते समय पक्षकारों के

आचरण पर भी विचार किया जाना चाहिए । इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा **मेकर्स डेवलपमेंट सर्विसिज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **एम. विश्वेशरय्या इंडस्ट्रीयल रिसर्च एंड डेवलपमेंट सेंटर**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश किया जा सकता है ।

26. किसी भी दशा में व्यादेश के आदेश द्वारा अंतिम अनुतोष अननुज्ञेय है । इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा **बी. एस. एन. एल.** बनाम **प्रेम चंद प्रेमी**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश किया जा सकता है ।

27. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **बैस्ट सेलर्स रिटेल (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **आदित्य बिड़ला नूवो लिमिटेड और अन्य**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय में यह सुस्थापित किया गया है कि अनुतोष की ईप्सा करने वाले पक्षकार अर्थात् वादी के हक में केवल प्रथमदृष्ट्या मामला बनना ही पर्याप्त नहीं है । यह भी उपदर्शित किया जाना चाहिए कि अस्थायी व्यादेश मंजूर करने से इनकार करने की दशा में वादी को पहुंची क्षति अपूर्णनीय क्षति होगी ।

28. **रय्यत शिक्षण संस्थान** बनाम **सुनील शिवा गायकवाड़**[4] वाले मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि व्यादेश कारण अभिलिखित करके ही मंजूर करना या खारिज करना आज्ञापक है ।

29. तथापि, आदेश 39, नियम 3 के अधीन शक्ति की व्याप्ति के भीतर एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश मंजूर करने से संबंधित विधि भिन्न सिद्धांतों पर प्रयुक्त की जाएगी और यह न्यायालय उक्त उपबंध पर विचार नहीं कर रहा है क्योंकि स्वीकृतत: वर्तमान मामले में अंतरिम व्यादेश अमीन की रिपोर्ट आमंत्रित करके प्रतिवादी की उपस्थिति में मंजूर किया गया है ।

30. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के

---

[1] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 437 = (2012) 1 एस. सी. सी. 735.

[2] 2005 (13) एस. सी. सी. 505 = ए. आई. आर. आनलाइन 2005 एस. सी. 426.

[3] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2448 = (2012) 6 एस. सी. सी. 792.

[4] (2010) 15 एस. सी. सी. 539.

अधीन अस्थायी व्यादेश की मंजूरी के उपर्युक्त सिद्धांत को दृष्टिगत करते हुए यह सुसंगत होगा कि तारीख 28 अगस्त, 2018 के आदेश पर विचार किया जाए जिसे वर्तमान याचिका में आक्षेपित किया गया है ।

31. उपर्युक्त आदेश का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विचारण न्यायालय ने मात्र वादी द्वारा प्रकथन किए गए दावे को और उसके द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों पर विचार करके और इस बात पर विचार करके कि प्रतिवादी ने अस्थायी व्यादेश आवेदन के संबंध में कोई लिखित कथन या आक्षेप फाइल नहीं किया है, यह मत व्यक्त किया है कि स्थल की सही स्थिति के संबंध में कोई रिपोर्ट प्राप्त किए बिना सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन फाइल किए गए आवेदन 6-ग अर्थात् अस्थायी व्यादेश आवेदन को विनिश्चित करना संभव नहीं है । इसके पश्चात् न्यायालय ने अमीन की रिपोर्ट मंगाई और अमीन की रिपोर्ट प्राप्त होने तक वादी को संरक्षण प्रदान कर दिया ।

32. विचारण न्यायालय द्वारा अंतरिम व्यादेश पारित करने के लिए जिसके द्वारा प्रतिवादी को वाद संपत्ति से संबंधित कोई अवैध कार्य करने से रोका गया है, कोई चर्चा नहीं की गई है या कारण नहीं दिए गए हैं ।

33. इस न्यायालय के सुविचारित मतानुसार उक्त आदेश अंतर्वर्ती आदेश के अर्थान्तर्गत अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अस्थायी व्यादेश के अन्तर्गत नहीं आएगा । अत: उक्त आदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त अस्थायी व्यादेश का आदेश भले ही यह अंतर्वर्ती हो, इस प्रकार का है जिससे कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन अपील किए जाने योग्य है ।

34. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिए गए निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से भिन्न हैं ।

35. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए यह उल्लेखनीय है कि विचारण

न्यायालय ने तारीख 28 अगस्त, 2018 को मंजूर किया गया अंतरिम व्यादेश मात्र इस तथ्य के आधार पर मंजूर किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 2 के अधीन आवेदन उसके समक्ष लंबित है ।

36. तथापि, प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उसे इस बात की युक्तियुक्त आशंका है कि वादी आवेदन 6-ग के निपटान को विलंबित करके अंतरिम व्यादेश का आदेश प्राप्त करने में सफल हो जाएगा और उन्होंने यह भी दलील दी है कि विचारण न्यायालय अपेक्षित प्रगति के साथ कार्यवाही नहीं कर रहा है ।

37. उपर्युक्त दलील पर विचार करते हुए यह निदेश दिया जाता है कि विचारण न्यायालय अगली नियत तारीख पर अस्थायी व्यादेश आवेदन को विनिश्चित करने के लिए पूरा प्रयास करेगा ।

38. दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों ने यह निवेदन किया है कि वादी और प्रतिवादी यह वचनबंध देते हैं कि वे अस्थायी व्यादेश के निपटान के लिए अगली नियत तारीख को कोई स्थगन आवेदन पेश नहीं करेंगे । दोनों पक्षों द्वारा अमीन की रिपोर्ट पर आक्षेप यदि अभी तक फाइल नहीं किया गया है तब यदि वे चाहें तो भी वे अगली नियत तारीख को पेश कर सकते हैं ।

39. अत: विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह अमीन की रिपोर्ट, यदि फाइल की गई है, पर पक्षकारों द्वारा किए गए आक्षेपों पर विचार करने के पश्चात् अस्थायी आवेदन का विनिश्चय करे । किसी भी दशा में किसी भी पक्षकार को किसी भी आधार पर कोई स्थगन मंजूर नहीं किया जाएगा ।

40. यदि किसी अन्य परिस्थिति के अधीन जो विचारण न्यायालय या पक्षकारों के नियंत्रणाधीन नहीं है, व्यादेश आवेदन का विनिश्चय नहीं किया जाता है तो न्यायालय 2 सप्ताह की अवधि के भीतर की अर्थात् शीघ्र की तारीख नियत करेगा और उसके पश्चात् अस्थायी व्यादेश आवेदन का अंतिम रूप से निपटान करेगा ।

41. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि वादी द्वारा किसी भी आधार पर अस्थायी व्यादेश के निपटान के लिए नियत तारीख को कोई स्थगन मंजूर करने के लिए आवेदन किया जाता है तो विचारण न्यायालय तारीख 28 अगस्त, 2018 को मंजूर किए गए अंतिरम व्यादेश को आगे नहीं बढ़ाएगा ।

42. उपर्युक्त संप्रेक्षणों और निदेशों के अध्यधीन वर्तमान याचिका निपटाई जाती है ।

याचिका में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 470 **उत्तराखंड**

प्रताप और एक अन्य

बनाम

अनिल

तारीख़ 25 मार्च, 2019

[2015 की रिट याचिका सं. 419 (एम. एस.)]

न्यायमूर्ति लोक पाल सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 – अस्थायी व्यादेश के लिए आवेदन – वादी द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध भूमि पर से बेकब्ज़ा करने और फसल काटने से रोकने के लिए अनुतोष मांगा जाना – वादी द्वारा खतौनी, खसरा और कब्ज़ा-पत्र द्वारा अपना कब्जा और सुविधा का संतुलन साबित किया जाना – प्रतिवादियों द्वारा अपने स्वामित्व और क़ब्जे के बारे में कोई दस्तावेज पेश न किया जाना – अस्थायी व्यादेश ठीक ही मंजूर किया गया है ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी ने 2011 का मूल वाद सं. 93, अनिल बनाम प्रताप और एक अन्य यह कथन करते हुए निषेधात्मक व्यादेश के लिए फाइल किया था कि वादी (हमारे समक्ष का

प्रत्यर्थी) मौजा ग्राम कलसिया परगना गोरधान पुर तहसील लक्सर जिला हरिद्वार स्थित खसरा सं. 321 क्षेत्रफल 0.53 हेक्टेयर का स्वामी और काबिज है और उक्त भूमि के ऊपर उसकी गन्ने की फसल खड़ी है । यह कहा गया है कि याची (प्रतिवादी) प्रत्यर्थी (वादी) को बेकब्जा करने की धमकी दे रहे हैं और विवादित भूमि का अवैध रूप से कब्जा लेने और फसल काटने की भी धमकी दे रहे हैं । याचीगण (प्रतिवादी) उपस्थित हुए और उन्होंने यह कहते हुए अपने आक्षेप फाइल किए कि वादी विवादित संपत्ति पर काबिज नहीं है और प्रतिवादी विवादित संपत्ति पर काबिज हैं । यह कहा गया है कि याचियों द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229ख के अधीन भूमिधारी अधिकारों की घोषणा के लिए एक वाद फाइल किया गया था जो कि खारिज कर दिया गया था और जिसकी अपील लंबित है । यह भी कहा गया है कि उपर्युक्त अपील में विद्वान् अपर आयुक्त, गढ़वाल खंड, पौड़ी द्वारा यथास्थिति आदेश पारित किया गया है । याचियों द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका अपर जिला न्यायाधीश, लक्सर, जिला हरिद्वार द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2015 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने 2011 के मूल वाद सं. 93, अनिल बनाम प्रताप और एक अन्य में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), लक्सर जिला हरिद्वार द्वारा तारीख 24 मार्च, 2012 को पारित आदेश को अभिखंडित करते हुए वादी-अनिल (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी) द्वारा फाइल अपील को मंजूर किया है और प्रतिवादियों (हमारे समक्ष के याचियों) को वाद संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोक दिया है । प्रतिवादियों ने उक्त आदेश से व्यथित होकर संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका फाइल की है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आक्षेपित आदेश के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विद्वान् अपील न्यायालय ने वादी (प्रत्यर्थी) के हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनने, सुविधा का संतुलन होने और अपूर्णनीय क्षति कारित होने के संबंध में स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाली कोई सामग्री नहीं है कि प्रतिवादी (याची)

विवादित संपत्ति के स्वामी हैं अथवा उस पर काबिज हैं । चूंकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी का अंतिरम व्यादेश आवेदन सरसरी रीति में खारिज किया है इसलिए विद्वान् अपील न्यायालय ने अपील में आदेश को ठीक ही अपास्त करते हुए वादी के हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनने, वादी के हक में व्यादेश मंजूर न करने के बारे में सुविधा का संतुलन होने, वादी को अपूर्णनीय क्षति होने के बारे में आधारभूत संघटकों से संतुष्ट होने के पश्चात् अंतरिम व्यादेश आवेदन मंजूर किया है और इसलिए वाद विफल हो जाएगा यदि वादी के हक में अंतरिम आदेश मंजूर नहीं किया जाता है । अपील न्यायालय द्वारा इस संबंध में अभिलिखित निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध तात्विक साक्ष्य पर आधारित हैं । याची अपील न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या अनुचितता उपदर्शित नहीं कर सके हैं । यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में अपील न्यायालय के सदृश कार्य नहीं कर सकता । याची स्वयं को कोई अन्याय होने की बात को उपदर्शित करने में विफल रहे हैं । दूसरे शब्दों में चूंकि याची विवादित संपत्ति के ऊपर अपनी हकदारी और क़ब्ज़ा साबित नहीं कर सके हैं इसलिए प्रत्यर्थी ने अपने हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनने, सुविधा का संतुलन होने और स्वयं को अपूर्णनीय क्षति होने के तथ्य को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता एक परिसीमित अधिकारिता है । न्यायालय तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब याची यह साबित करने में पूर्णतया सफल रहे हों कि आक्षेपित आदेश पारित करने से उनके साथ अन्याय हुआ है । उपर्युक्त उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई अनुचितता और अवैधता प्रतीत नहीं होती है । रिट याचिका विफल होती है और खारिज की जाती है । (पैरा 8, 9, 10, 11 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5587 = (2018) 12 एस. सी. सी. 584 : **अनिल कुमार सिंह** बनाम **विजय पाल सिंह** ;	12

[2015] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3269 = (2015) 5 एस. सी. सी. 423 : **राधेश्याम और एक अन्य** बनाम **छविनाथ और अन्य** ; 13

[1967] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1 : **नरेश श्रीधर मिराजकर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 13

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2015 की रिट याचिका सं. 419 (एम. एस.).

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री प्रदीप चौहान

प्रत्यर्थी की ओर से श्री महावीर सिंह त्यागी

न्यायमूर्ति लोक पाल सिंह – याचियों द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका अपर जिला न्यायाधीश, लक्सर, जिला हरिद्वार द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2015 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने 2011 के मूल वाद सं. 93, अनिल बनाम प्रताप और एक अन्य में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), लक्सर जिला हरिद्वार द्वारा तारीख 24 मार्च, 2012 को पारित आदेश को अभिखंडित करते हुए वादी-अनिल (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी) द्वारा फाइल अपील को मंजूर किया है और प्रतिवादियों (हमारे समक्ष के याचियों) को वाद संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोक दिया है ।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी ने 2011 का मूल वाद सं. 93, अनिल बनाम प्रताप और एक अन्य यह कथन करते हुए निषेधात्मक व्यादेश के लिए फाइल किया था कि वादी (हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी) मौजा ग्राम कलसिया परगना गोरधान पुर तहसील लक्सर जिला हरिद्वार स्थित खसरा सं. 321 क्षेत्रफल 0.53 हेक्टेयर का स्वामी और काबिज है और उक्त भूमि के ऊपर उसकी गन्ने की फसल खड़ी है । यह कहा गया है कि याची (प्रतिवादी) प्रत्यर्थी (वादी) को बेकब्जा करने की

धमकी दे रहे हैं और विवादित भूमि का अवैध रूप से कब्जा लेने और फसल काटने की भी धमकी दे रहे हैं । याचीगण (प्रतिवादी) उपस्थित हुए और उन्होंने यह कहते हुए अपने आक्षेप फाइल किए कि वादी विवादित संपत्ति पर काबिज नहीं है और प्रतिवादी विवादित संपत्ति पर काबिज हैं । यह कहा गया है कि याचियों द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229ख के अधीन भूमिधारी अधिकारों की घोषणा के लिए एक वाद फाइल किया गया था जो कि खारिज कर दिया गया था और जिसकी अपील लंबित है । यह भी कहा गया है कि उपर्युक्त अपील में विद्वान् अपर आयुक्त, गढ़वाल खंड, पौड़ी द्वारा यथास्थिति आदेश पारित किया गया है ।

3. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।

4. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि वादी (प्रत्यर्थी) विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष सच्चाई और ईमानदारी के साथ नहीं आया और इसलिए विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 24 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा वादी द्वारा फाइल किया गया अंतरिम अनुतोष आवेदन खारिज कर दिया । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि विद्वान् अपील न्यायालय ने अपील मंजूर करने और याचियों को वादी (प्रत्यर्थी) के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए निदेश करने में अवैधता कारित की है ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या मामले, सुविधा के संतुलन और अपूर्णनीय हानि के संबंध में कोई कारण अभिलिखित नहीं किया है । यद्यपि विद्वान् विचारण न्यायालय ने सरसरी रीति में वादी द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों की प्रति खतौनी, खसरा की प्रति और वादी के हक में जारी किए गए कब्जे के पत्र का निर्देश किया है तथापि, न्यायालय ने इस बारे में कोई कारण अभिलिखित नहीं किया है कि वादी अपने हक में अपना प्रथमदृष्ट्या मामला और सुविधा का संतुलन साबित नहीं कर सका है और यदि अंतरिम व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है तो उसे अपूर्णनीय हानि होगी ।

6. तारीख 24 मार्च, 2012 के आदेश से व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(द) के अधीन प्रकीर्ण अपील फाइल की गई थी । विद्वान् अपील न्यायालय ने वादी (प्रत्यर्थी) के हक में जारी किए गए कब्जा पत्र, खसरा और खतौनी की प्रति पर विचार करने के पश्चात् तथा अभिलेख पर उपलब्ध अन्य दस्तावेजों अर्थात् चकबंदी अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि वादी (प्रत्यर्थी) ने अपने हक में प्रथमदृष्ट्या मामला, सुविधा का संतुलन और अपूर्णनीय क्षति का तथ्य पूर्ण रूप से साबित कर दिया है और इसलिए प्रतिवादियों (याचियों) को वाद संपत्ति के ऊपर वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए निदेश किया ।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी-वादी विवादित संपत्ति के ऊपर अपने अभिकथित अधिकारों की घोषणा के लिए याचियों द्वारा फाइल किए गए वाद में पक्षकार नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि चूंकि प्रत्यर्थी-वादी अपर आयुक्त, गढ़वाल खंड, पौड़ी के समक्ष लंबित अपील में पक्षकार नहीं है इसलिए विद्वान् अपर आयुक्त द्वारा पारित यथास्थिति बनाए रखने के आदेश वादी के ऊपर आबद्धकर नहीं है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि विद्वान् विचारण न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना अपर आयुक्त, गढ़वाल खंड द्वारा पारित यथास्थिति बनाए रखने के आदेश से प्रभावित हुआ था कि वादी न तो पक्षकार है और न ही यथास्थिति बनाए रखने के आदेश उसके ऊपर आबद्धकर है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि अपील न्यायालय द्वारा यथास्थिति बनाए रखने का आदेश इस बात को ध्यान में रखे बिना पारित किया गया है कि पक्षकार किस प्रकार की यथास्थिति कायम रखेंगे और इसलिए यह किसी भी रीति में वादी पर आबद्धकर नहीं है । अत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने अंतरिम व्यादेश आवेदन खारिज करने में अवैधता कारित की है और इसलिए विद्वान् अपील न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि वादी वाद संपत्ति पर काबिज है और स्वामी है और याचियों द्वारा वादी को बेकब्जा करने और प्रत्यर्थी-वादी की गन्ने की फसल काटने की धमकी दी गई थी इसलिए वादी के हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनता था और प्रत्यर्थी-वादी के हक में सुविधा का

संतुलन भी था और यदि वादी के अधिकारों के संरक्षण के लिए कोई अंतरिम आदेश मंजूर नहीं किया जाता है तो वादी को अपूर्णनीय हानि और क्षति होगी जो किसी भी प्रकार से धन के रूप में प्रतिकारित नहीं की जा सकेगी । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपील न्यायालय के तर्कपूर्ण निर्णय में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

8. आक्षेपित आदेश के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विद्वान् अपील न्यायालय ने वादी (प्रत्यर्थी) के हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनने, सुविधा का संतुलन होने और अपूर्णनीय क्षति कारित होने के संबंध में स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाली कोई सामग्री नहीं है कि प्रतिवादी (याची) विवादित संपत्ति के स्वामी हैं अथवा उस पर काबिज हैं ।

9. चूंकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी का अंतिरम व्यादेश आवेदन सरसरी रीति में खारिज किया है इसलिए विद्वान् अपील न्यायालय ने अपील में आदेश को ठीक ही अपास्त करते हुए वादी के हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनने, वादी के हक में व्यादेश मंजूर न करने के बारे में सुविधा का संतुलन होने, वादी को अपूर्णनीय क्षति होने के बारे में आधारभूत संघटकों से संतुष्ट होने के पश्चात् अंतरिम व्यादेश आवेदन मंजूर किया है और इसलिए वाद विफल हो जाएगा यदि वादी के हक में अंतरिम आदेश मंजूर नहीं किया जाता है ।

10. अपील न्यायालय द्वारा इस संबंध में अभिलिखित निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध तात्विक साक्ष्य पर आधारित हैं । याची अपील न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या अनुचितता उपदर्शित नहीं कर सके हैं । यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में अपील न्यायालय के सदृश कार्य नहीं कर सकता । याची स्वयं को कोई अन्याय होने की बात को उपदर्शित करने में विफल रहे हैं । दूसरे शब्दों में चूंकि याची विवादित संपत्ति के ऊपर अपनी हकदारी और कब्जा साबित नहीं कर सके हैं इसलिए प्रत्यर्थी ने अपने हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनने,

सुविधा का संतुलन होने और स्वयं को अपूर्णनीय क्षति होने के तथ्य को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है ।

11. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता एक परिसीमित अधिकारिता है । न्यायालय तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब याची यह साबित करने में पूर्णतया सफल रहे हों कि आक्षेपित आदेश पारित करने से उनके साथ अन्याय हुआ है ।

12. माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **अनिल कुमार सिंह** बनाम **विजय पाल सिंह**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "28. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि उच्च न्यायालय को यह देखना चाहिए था कि रिट याचिका का क्षेत्र इस बारे में प्रश्न की परीक्षा करने तक सीमित था कि क्या विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 1 के अधीन वादी द्वारा फाइल किया गया आवेदन मंजूर करने में और इस प्रश्न को विनिश्चित करने में न्यायपूर्ण कार्य किया है कि उच्च न्यायालय को यह परीक्षा करने में अपनी जांच परिसीमित करनी चाहिए थी कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 1 की अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया था या नहीं न कि इसके परे ।
>
> 29. अत: उच्च न्यायालय की ओर से इस बारे में न्याय नहीं किया गया है कि वह वाद के संबंध में व्यादेश को मंजूर करने से संबंधित विवाद्यकों से बाहर चला गया है और उसने अपीलार्थी (वादी) को विवादित भूमि का कब्जा प्रत्यर्थी सं. 1 को देने के लिए निदेश दिया है ।
>
> 30. उच्च न्यायालय को यह देखना चाहिए था कि चूंकि रिट याचिका में व्यादेश की मंजूरी का विवाद्यक याचिका की विषय-वस्तु नहीं था इसलिए वाद के प्रतिसंहरण के प्रश्न के संबंध में उसे कुछ नहीं करना था और द्वितीयत: किसी वाद का प्रतिसंहरण

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5587 = (2018) 12 एस. सी. सी. 584.

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 1 द्वारा विनियमित होता है जबकि व्यादेश संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 द्वारा विनियमित होता है । दोनों ही आदेश भिन्न-भिन्न क्षेत्रों को लागू होते हैं । इसके अतिरिक्त प्रतिवादी ने आदेश 43, नियम 1 (द) के अधीन अपील में व्यादेश की एकपक्षीय मंजूरी को आक्षेपित नहीं किया है और न ही उसने विचारण न्यायालय के समक्ष इसका विरोध किया है । इस बारे में केवल दो मंच थे, व्यादेश के जारी करने पर न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है तथापि, वर्तमान कार्यवाहियों में नहीं जो जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, केवल वाद के प्रतिसंहरण तक परिसीमित थी और कुछ नहीं ।"

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **राधेश्याम और एक अन्य** बनाम **छविनाथ और अन्य**[1] वाले मामले में **नरेश श्रीधर मिराजकर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उपचार एक अपीलनीय उपचार नहीं है और इसका अत्यधिक आपवादिक मामलों में ही प्रयोग किया जा सकता है जहां न्याय की स्पष्ट हानि पाई गई हो और जहां न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अनुचितता हो ।

14. उपर्युक्त उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए मुझे आक्षेपित आदेश में कोई अनुचितता और अवैधता प्रतीत नहीं होती है । रिट याचिका विफल होती है और खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस न्यायालय द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2015 को पारित अंतरिम आदेश एतद्द्वारा रद्द किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3269 = (2015) 5 एस. सी. सी. 423.

[2] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1.

पी. के. हमज़ा हाजी

बनाम

केरल राज्य वक़्फ़ बोर्ड और अन्य

[2019 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7632]

तारीख़ 3 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति सी. के. अब्दुल रहीम और न्यायमूर्ति आर. नारायण पिशारादी

वक़्फ़ अधिनियम, 1995 (1995 का 43) – धारा 54 – वक़्फ़ संपत्ति पट्टे पर दी जानी – पट्टे की अवधि के पर्यवसान के पश्चात् पट्टाधारक द्वारा दुकान खाली न की जानी – पट्टेदार को अतिचारी मानकर मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा भिन्न अधिकारियों को कार्यवाही करने के लिए निदेश दिया जाना – विधिमान्यता – चूंकि अधिनियम के अधीन मुख्य कार्यपालक अधिकारी और अधिकरण को ही कार्यवाही करने के लिए प्राधिकृत किया गया है – अत: मुख्य कार्यपालक अधिकारी अपनी शक्ति किसी अन्य अधिकारी को प्रत्यायोजित करके कार्यवाही नहीं करा सकता – अत: ऐसा कोई प्रत्यायोजन विधिविरुद्ध होगा ।

याची एक दुकान (कक्ष) जिसकी सं. 3/392 है और जो तृतीय प्रत्यर्थी वक़्फ़ की संपत्ति है, का अधिभोगी है । सूचना प्रदर्श पी-5 द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा याची को यह सूचना देते हुए जारी की गई थी कि वह पट्टे की अवधि के अवसान के पश्चात् वक़्फ़ अधिनियम, 1995 की धारा 54 के भंग में प्रश्नगत दुकान पर अवैध रूप से काबिज है । उक्त सूचना के जरिए याची से दुकान खाली करने और 15 दिन के अंदर दुकान का कब्जा संबंधित वक़्फ़ के सुपुर्द करने का अनुरोध किया गया था और इससे विफल रहने पर अधिनियम की धारा 55 के अधीन कार्रवाई करने का प्रस्ताव किया गया था । उक्त सूचना में यह स्पष्ट किया गया है कि याची इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि वह वक़्फ़

संपत्ति पट्टा नियम, 2014 (यथा संशोधित) के अधीन प्रश्नगत दुकान को पट्टे पर दिए जाने के लिए नीलामी में भाग ले सकेगा । इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा याची को जारी सूचना प्रदर्श पी-5 को और चतुर्थ प्रत्यर्थी की ओर से द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा जारी किए गए पत्र प्रदर्श पी-8 को चुनौती दी गई है । याची ने अन्य बातों के साथ-साथ द्वितीय प्रत्यर्थी के समक्ष प्रस्तुत अनुरोध-पत्र प्रदर्श पी-6 पर विचार करने के लिए निदेश जारी करने की ईप्सा की है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विवादित नहीं है कि प्राधिकारी किसी वक़्फ़ संपत्ति से किसी अतिचार को हटाने के लिए कार्रवाई करने के लिए वक़्फ़ बोर्ड का 'मुख्य कार्यपालक अधिकारी' सशक्त है । ऐसी कोई कार्रवाई आरंभ करने के लिए मुख्य कार्यपालक अधिकारी 'अतिचारी' को सूचना जारी करने के लिए आबद्ध है जिसमें अतिचार की विशिष्टियों का उल्लेख होना चाहिए और उससे अतिचार हटाने की अपेक्षा करते हुए यह कारण बताओ सूचना जारी की जानी चाहिए कि अतिचार को हटाने के लिए कोई आदेश क्यों न जारी किया जाए । वक़्फ़ अधिनियम की धारा 54 की उपधारा (3) के अनुसार मुख्य कार्यपालक अधिकारी 'अतिचारी' द्वारा किए गए आक्षेप पर विचार करने और विहित रीति में जांच करने के लिए आबद्ध है । ऐसी जांच में यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि वक़्फ़ संपत्ति पर कोई अतिचार किया गया है तो वह ऐसे अतिचार को हटाने के लिए कोई आदेश मंजूर करने के लिए और संपत्ति का कब्जा वक़्फ़ के 'मुतवल्ली' को परिदत्त करने के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन कर सकता है । अधिकरण मुख्य कार्यपालक अधिकारी से ऐसा कोई आवेदन प्राप्त होने पर बेदखली का आदेश पारित कर सकता है जिसके लिए कारण अभिलिखित किए जाएंगे और उस व्यक्ति को जिसके विरुद्ध मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा बेदखली के लिए ऐसा आवेदन फाइल किया गया है, सुनने का अवसर देने के पश्चात् वक़्फ़ संपत्ति के अधिभोगी व्यक्ति को परिसर खाली करने के लिए निदेश दिया जा सकेगा । उपर्युक्त कानूनी उपबंधों के क्षेत्र पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि अतिचारी को हटाने के लिए शक्ति केवल मुख्य कार्यपालक

अधिकारी में और वक्फ अधिकरण में निहित है । मुख्य कार्यपालक अधिकारी स्वयं धारा 54 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कर सकता है । वह अभिकथित 'अतिचारी' से किसी आक्षेप के प्राप्त होने पर आक्षेप के आधार पर जांच करने के लिए आबद्ध है । वह अतिचार के बारे में समाधान होने पर अतिचारी को हटाने के लिए आदेश प्राप्त करने के लिए वक़्फ़ अधिकरण के समक्ष समावेदन करने के लिए आबद्ध है । वक़्फ़ अधिनियम अथवा पट्टा नियमों के अधीन ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालक अधिकारी वक़्फ़ बोर्ड के किसी अन्य अधिकारी को ऐसी शक्तियां प्रत्यायोजित करने के लिए प्राधिकृत हो । स्थायी काउंसेल भी ऐसे किसी उपबंध को बताने की स्थिति में नहीं हैं जिसके द्वारा ऐसी शक्ति का विधिमान्य प्रत्यायोजन हो सकता हो । अत: न्यायालय का यह मत है कि द्वितीय प्रत्यर्थी (खंड अधिकारी) द्वारा याची को 'अतिचारी' होने के आधार पर दुकान का कब्जा वापस लेने के लिए आरंभ की गई कार्रवाई सक्षमता और अधिकारिता के बिना की गई है । अत: याची इन कार्यवाहियों को अभिखंडित करने वाला आदेश प्राप्त करने का हकदार है । उपर्युक्त उल्लिखित परिस्थितियों के अधीन यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा याची के विरुद्ध जारी की गई सूचना प्रदर्श पी-5, जिसके द्वारा उसे वक़्फ़ अधिनियम, 1995 की धारा 54 के अधीन कार्रवाई करने की चेतावनी दी गई है, एतद्द्वारा अभिखंडित की जाती है क्योंकि यह सूचना प्राधिकार और सक्षमता के बिना जारी की गई है । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 कार्यवाहियां प्रदर्श पी-5 के आधार पर याची को दुकान से बेदखल करने के लिए कोई कार्रवाई करने के लिए हकदार नहीं हैं । तथापि, न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि उपर्युक्त निर्णय वक़्फ़ अधिनियम की धारा 54 के अधीन याची के विरुद्ध मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा नए सिरे से कार्रवाई आरंभ करने में बाधक नहीं होगा, यदि यह पाया जाता है कि याची वक़्फ़ अधिनियम के उपबंधों के अधीन 'अतिचारी' की परिभाषा के भीतर आने वाला व्यक्ति है और ऐसी कार्रवाई अपेक्षित कानूनी औपचारिकताओं का अनुपालन करने

के पश्चात् की जानी चाहिए । यदि याची की पट्टे की अवधि पर्यवसित हो गई है तो प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 वक़्फ़ संपत्ति पट्टा नियम, 2014 में किए गए उपबंधों के अनुसार नीलामी करने के लिए स्वतंत्र होंगे । (पैरा 5, 6, 7 और 8)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2019 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7632.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री पी. के. मोहम्मद पोजक्कारा
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री टी. पी. साजिद, स्थायी काउंसेल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. के. अब्दुल रहीम ने दिया ।

न्या. रहीम – जब उपर्युक्त रिट याचिका हमारे समक्ष ग्रहण किए जाने के लिए पेश हुई तब हमने प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से उपस्थित होने के लिए और अनुदेश प्राप्त करने के लिए स्थायी काउंसेल को निदेश दिया । याची के विद्वान् काउंसेल को सुनने और स्थायी काउंसेल को जिन्होंने प्रत्यर्थी सं. 1 से 2 से प्राप्त अनुदेशों के आधार पर मामले में बहस की, सुनने के पश्चात् हम यह उचित समझते हैं कि प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 को सूचना जारी किए बिना मामले को ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही रिट याचिका मंजूर की जानी चाहिए ।

2. इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा याची को जारी सूचना प्रदर्श पी-5 को और चतुर्थ प्रत्यर्थी की ओर से द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा जारी किए गए पत्र प्रदर्श पी-8 को चुनौती दी गई है । याची ने अन्य बातों के साथ-साथ द्वितीय प्रत्यर्थी के समक्ष प्रस्तुत अनुरोध-पत्र प्रदर्श पी-6 पर विचार करने के लिए निदेश जारी करने की ईप्सा की है ।

3. याची एक दुकान (कक्ष) जिसकी सं. 3/392 है और जो तृतीय प्रत्यर्थी वक़्फ़ की संपत्ति है, का अधिभोगी है । सूचना प्रदर्श पी-5

द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा याची को यह सूचना देते हुए जारी की गई थी कि वह पट्टे की अवधि के अवसान के पश्चात् वक़्फ़ अधिनियम, 1995 की धारा 54 के भंग में प्रश्नगत दुकान पर अवैध रूप से काबिज है । उक्त सूचना के जरिए याची से दुकान खाली करने और 15 दिन के अंदर दुकान का कब्जा संबंधित वक़्फ़ के सुपुर्द करने का अनुरोध किया गया था और इससे विफल रहने पर अधिनियम की धारा 55 के अधीन कार्रवाई करने का प्रस्ताव किया गया था । उक्त सूचना में यह स्पष्ट किया गया है कि याची इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि वह वक़्फ़ संपत्ति पट्टा नियम, 2014 (यथा संशोधित) के अधीन प्रश्नगत दुकान को पट्टे पर दिए जाने के लिए नीलामी में भाग ले सकेगा ।

4. याची के अनुसार सूचना प्रदर्श पी-5 के प्राप्त होने पर उसने प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष उत्तर प्रदर्श पी-6 प्रस्तुत किया था जिसमें उसने इस अभिकथन का खंडन किया था कि वह दुकान पर अवैध रूप से काबिज है और उसने इस बात से भी इनकार किया था कि वह वक़्फ़ अधिनियम की धारा 54 के अधीन एक 'अतिचारी' है । तथापि, द्वितीय प्रत्यर्थी ने उक्त आक्षेपों पर विचार किए बिना प्रत्यर्थी सं. 4 को प्रदर्श पी-5 जारी करने के बारे में सूचना देते हुए और प्रत्यर्थी सं. 4 को पट्टा नियमों के अनुसरण में किसी व्यक्ति को दुकान पट्टे पर देने के लिए समुचित कार्रवाई करने के लिए पत्र प्रदर्श पी-8 जारी किया ।

5. याची द्वारा मुख्य रूप से वक़्फ़ अधिनियम की धारा 54 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए द्वितीय प्रत्यर्थी की सक्षमता को आक्षेपित किया गया है । यह विवादित नहीं है कि प्राधिकारी किसी वक़्फ़ संपत्ति से किसी अतिचार को हटाने के लिए कार्रवाई करने के लिए वक़्फ़ बोर्ड का 'मुख्य कार्यपालक अधिकारी' सशक्त है । ऐसी कोई कार्रवाई आरंभ करने के लिए मुख्य कार्यपालक अधिकारी 'अतिचारी' को सूचना जारी करने के लिए आबद्ध है जिसमें अतिचार की विशिष्टियों का उल्लेख होना चाहिए और उससे अतिचार हटाने की अपेक्षा करते हुए यह कारण बताओ सूचना जारी की जानी चाहिए कि अतिचार को हटाने के

लिए कोई आदेश क्यों न जारी किया जाए । वक़्फ़ अधिनियम की धारा 54 की उपधारा (3) के अनुसार मुख्य कार्यपालक अधिकारी 'अतिचारी' द्वारा किए गए आक्षेप पर विचार करने और विहित रीति में जांच करने के लिए आबद्ध है । ऐसी जांच में यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि वक़्फ़ संपत्ति पर कोई अतिचार किया गया है तो वह ऐसे अतिचार को हटाने के लिए कोई आदेश मंजूर करने के लिए और संपत्ति का कब्जा वक़्फ़ के 'मुतवल्ली' को परिदत्त करने के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन कर सकता है । अधिकरण मुख्य कार्यपालक अधिकारी से ऐसा कोई आवेदन प्राप्त होने पर बेदखली का आदेश पारित कर सकता है जिसके लिए कारण अभिलिखित किए जाएंगे और उस व्यक्ति को जिसके विरुद्ध मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा बेदखली के लिए ऐसा आवेदन फाइल किया गया है, सुनने का अवसर देने के पश्चात् वक़्फ़ संपत्ति के अधिभोगी व्यक्ति को परिसर खाली करने के लिए निदेश दिया जा सकेगा ।

6. उपर्युक्त कानूनी उपबंधों के क्षेत्र पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि अतिचारी को हटाने के लिए शक्ति केवल मुख्य कार्यपालक अधिकारी में और वक़्फ़ अधिकरण में निहित है । मुख्य कार्यपालक अधिकारी स्वयं धारा 54 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कर सकता है । वह अभिकथित 'अतिचारी' से किसी आक्षेप के प्राप्त होने पर आक्षेप के आधार पर जांच करने के लिए आबद्ध है । वह अतिचार के बारे में समाधान होने पर अतिचारी को हटाने के लिए आदेश प्राप्त करने के लिए वक़्फ़ अधिकरण के समक्ष समावेदन करने के लिए आबद्ध है । वक़्फ़ अधिनियम अथवा पट्टा नियमों के अधीन ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालक अधिकारी वक़्फ़ बोर्ड के किसी अन्य अधिकारी को ऐसी शक्तियां प्रत्यायोजित करने के लिए प्राधिकृत हो । स्थायी काउंसेल भी ऐसे किसी उपबंध को बताने की स्थिति में नहीं है जिसके द्वारा ऐसी शक्ति का विधिमान्य प्रत्यायोजन हो सकता हो । अत: हमारा यह मत है कि द्वितीय प्रत्यर्थी (खंड अधिकारी) द्वारा याची

को 'अतिचारी' होने के आधार पर दुकान का कब्जा वापस लेने के लिए आरंभ की गई कार्रवाई सक्षमता और अधिकारिता के बिना की गई है । अत: याची इन कार्यवाहियों को अभिखंडित करने वाला आदेश प्राप्त करने का हकदार है ।

7. उपर्युक्त उल्लिखित परिस्थितियों के अधीन यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा याची के विरुद्ध जारी की गई सूचना प्रदर्श पी-5, जिसके द्वारा उसे वक़्फ़ अधिनियम, 1995 की धारा 54 के अधीन कार्रवाई करने की चेतावनी दी गई है, एतद्द्वारा अभिखंडित की जाती है क्योंकि यह सूचना प्राधिकार और सक्षमता के बिना जारी की गई है । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 कार्यवाहियां प्रदर्श पी-5 के आधार पर याची को दुकान से बेदखल करने के लिए कोई कार्रवाई करने के लिए हकदार नहीं हैं ।

8. तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि उपर्युक्त निर्णय वक़्फ़ अधिनियम की धारा 54 के अधीन याची के विरुद्ध मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा नए सिरे से कार्रवाई आरंभ करने में बाधक नहीं होगा, यदि यह पाया जाता है कि याची वक़्फ़ अधिनियम के उपबंधों के अधीन 'अतिचारी' की परिभाषा के भीतर आने वाला व्यक्ति है और ऐसी कार्रवाई अपेक्षित कानूनी औपचारिकताओं का अनुपालन करने के पश्चात् की जानी चाहिए । यदि याची की पट्टे की अवधि पर्यवसित हो गई है तो प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 वक़्फ़ संपत्ति पट्टा नियम, 2014 में किए गए उपबंधों के अनुसार नीलामी करने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 486 गुजरात

लक्ष्मण भीमाभाई दाकी और अन्य

बनाम

कादवीबेन भीमाभाई दाकी और अन्य

तारीख 1 अप्रैल, 2019

(2017 की द्वितीय अपील सं. 205)

न्यायमूर्ति बी. एन. कारिया

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 6 और 8 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 20, नियम 12 – संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति – विभाजन और अन्त:कालीन लाभों के लिए वाद – वादी और प्रतिवादी सगे भाई और बहिनें होना – प्रतिवादियों द्वारा यह अभिवचन किया जाना कि उनके द्वारा पिता के ऋणों को चुकाने के कारण उनके सह-अंश धारियों ने संपत्ति उनके सुपुर्द कर दी थी और वे उसमें खेती नहीं करते थे – प्रतिवादियों द्वारा पिता के ऋण को चुकाने का कोई सबूत पेश न किया जाना – राजस्व अभिलेखों में सह-अंश धारियों के नामों की भी प्रविष्टियां होना – वित्तीय स्थिति कमजोर होने के कारण संपत्ति अपने भाइयों को जोतने देने के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सह-अंश धारियों ने अपने अंश त्यक्त कर दिए थे – संयुक्त कुटुंबीय संपत्ति होने के कारण संपत्ति 20 वर्ष से अधिक की अवधि से प्रतिवादियों के कब्जे में होने के आधार पर सह-अंश धारियों का हक समाप्त नहीं हो जाता – अत: वे संपत्ति का विभाजन कराने और अंत:कालीन लाभ पाने के हकदार हैं ।

संक्षेप में इस मामले के तथ्यों का इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है – मूल वादियों ने ग्राम अजब, ताल्लुका केशोड जिला जूनागढ़ के क्षेत्र में स्थित कृषि भूमि के विभाजन और अन्त:कालीन लाभ के लिए 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 114 फाइल किया था । वादी द्वारा वाद में किए गए प्रकथनों के अनुसार ग्राम अजब के क्षेत्र में स्थित इस भूमि का माप कुल 16 एकड़ 6 गुंठा था और ये उनके पूर्वजों की संपत्ति थी और वे उक्त संपत्ति के सहदायिक हैं जिसका उल्लेख विशेष रूप से

वादपत्र में किया गया है । इस भूमि के कुल चार खंड हैं । वादी के कथनानुसार प्रत्येक पक्ष का विवादित संपत्ति में बराबर भाग अर्थात् 1/6 भाग है और प्रतिवादी वाद संपत्ति के ऊपर काबिज हैं । वादियों ने अपने भाग तथा अन्त:कालीन लाभ के लिए अनुरोध किया है । वादियों द्वारा किए गए अनुरोध को प्रतिवादियों द्वारा वाद संपत्ति में उनके भागों को सुपुर्द करने से इनकार किया गया था इसलिए वादियों ने विभाजन और अन्त:कालीन लाभ इत्यादि के लिए उक्त अनुरोध करते हुए वाद फाइल किया था । वर्तमान अपीलार्थियों ने जो 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 में मूल प्रतिवादी हैं, द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, जूनागढ़ द्वारा 2012 की नियमित सिविल अपील सं. 77 में तारीख 7 अक्तूबर, 2016 को पारित उस निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा पेश की गई उक्त अपील को खारिज करते हुए 1999 नियमित सिविल वाद सं. 114 में विद्वान् मुख्य सिविल न्यायाधीश, केशोड द्वारा तारीख 9 मई, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पेश किए गए अभिलेख का परिशीलन करने और अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को सुनने के पश्चात् यह विदित होता है कि वादियों ने विवादित संपत्ति में समान भाग अर्थात् 1/6 भाग का दावा किया है । प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन प्रदर्श-13 में यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादियों और वादी सं. 2 से 4 के पिता अर्थात् भीमा दाकी की हत्या कर दी गई थी और उस मुकदमेदारी में वृहत धनराशि खर्च हुई थी और वे ऋणी हो गए थे और इसलिए सभी वादियों ने संपत्ति प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दी थी और प्रतिवादी विवादित संपत्ति पर प्रभारित संपूर्ण ऋण का संदाय करने के लिए तैयार हो गए थे । प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में यह भी स्वीकार किया गया है कि उस समय वादियों ने यह भी सूचित किया था कि वे उक्त संपत्ति में खेती नहीं करना चाहते हैं और तद्द्वारा उन्होंने विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दिया था । तब से अब तक 20 वर्ष से अधिक की अवधि बीत चुकी है और प्रतिवादी तब से विवादित संपत्ति पर काबिज हैं क्योंकि उन्होंने अपने पिता भीमा

दाकी के ऋण का संदाय किया था । यह अविवादित तथ्य है कि विवादित संपत्ति पैतृक संपत्ति थी और राजस्व अभिलेखों में पक्षकारों के नामों की प्रविष्टियां संयुक्त रूप से की गई थीं । पक्षकार मृतक भीमा पुंजा दाकी के विधिक वारिस हैं । यदि हम विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करें और यह मान लें कि मृतक अर्थात् भीमा पुंजा के पिता की हत्या के कारण कुटुंब के ऊपर कोई ऋण था और कमजोर वित्तीय स्थिति के कारण विवादित संपत्ति का कब्जा वादियों द्वारा प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दिया गया था तब भी यह किसी प्रकार से नहीं कहा जा सकता कि वादियों ने विवादित संपत्ति में अपने अधिकार छोड़ दिए थे अथवा अपने अधिकार त्यक्त कर दिए थे । यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी सं. 1 कुटुंब का कर्ता होने के कारण विवादित संपत्ति का कब्जा उसके सुपुर्द किया गया था तथापि, वादियों ने विवादित संपत्ति में अपने अधिकारों को कभी भी त्यक्त नहीं किया था । प्रतिवादियों द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि उनके छोटे भाई और बहिनों के विवाह के खर्चे प्रतिवादियों द्वारा किए गए थे अथवा प्रतिवादियों द्वारा कोई नक़द धनराशि अथवा आभूषण दिए गए थे । यदि हम अभिलेख पर पेश किए गए दस्तावेजों अर्थात् प्रदर्श-44 और प्रदर्श-45 पर विचार करें तब लक्ष्मण भीमा दाकी के नाम पर 36,850/- रुपए का ऋण था तथापि, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादियों के पिता के विरुद्ध किसी ऋण के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है । प्रतिवादियों ने यह स्वीकार किया है कि प्रत्यक्षतया छह व्यक्ति मृतक भीमा पुंजा के प्राथमिक वारिस हैं । उन्होंने यह विवाद नहीं किया है कि वादियों का विवादित संपत्ति में कोई अधिकार, हक और हित नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने प्रत्येक पक्षकार के हक में 1/6 भाग मंजूर करते हुए वादियों द्वारा फाइल किए गए वाद को ठीक ही विनिश्चित किया है । विचारण न्यायालय द्वारा की गई चर्चा और निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई पुष्टि के आधार पर वादियों के हक में वर्ष 1999 से अन्त:कालीन लाभ भी मंजूर किए गए हैं । विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई पुष्टि को किसी भी प्रकार से

अनुचित या अवैध नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये निष्कर्ष केवल तथ्यात्मक पहलुओं के आधार पर पारित किए गए हैं । विवादित संपत्ति में वादियों के भाग के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष, प्रतिवादियों के पिता के ऋण, उनके द्वारा छोटे भाई और/या बहिनों के विवाह पर हुए खर्चे, प्रतिवादियों द्वारा की गई भूमि की खेती के संबंध में और विवादित संपत्ति में वादियों के भाग के संबंध में लिखित कथन में उनके द्वारा की गई स्वीकृतियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल की गई अपील में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता । अत: अपीलार्थियों द्वारा दलील दिए गए विधि के प्रश्न का वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध उत्तर दिया जाता है क्योंकि अपील में विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत होना नहीं पाया गया है । जहां तक श्री हरदास भीमाभाई दाकी द्वारा फाइल किए गए दूसरे वाद अर्थात् 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 113 का संबंध है, जिसमें ग्राम अजब के सर्वेक्षण सं. 32 पायकी में उपर्युक्त वाद में वादी को 1/2 भाग दिया गया है और विचारण न्यायालय के समक्ष विवाद अभी भी लंबित है, विचारण न्यायालयों द्वारा उक्त विवाद का मामले के इन तथ्यों पर कि उक्त वादी भी वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी सं. 4 है और वह 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 में एक वादी भी है जिसे उक्त संपत्ति में 1/6 भाग मंजूर किया गया है, विचार करने के पश्चात् विनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है । (पैरा 11, 12 और 13)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की द्वितीय अपील सं. 205.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री हर्षित एस. तोलिया और पार्थ एस. तोलिया

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति बी. एन. कारिया – वर्तमान अपीलार्थियों ने जो 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 में मूल प्रतिवादी हैं, द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, जूनागढ़ द्वारा 2012 की नियमित सिविल अपील सं. 77 में तारीख 7 अक्तूबर, 2016 को पारित उस निर्णय और डिक्री को आक्षेपित

किया है जिसके द्वारा वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा पेश की गई उक्त अपील को खारिज करते हुए 1999 नियमित सिविल वाद सं. 114 में विद्वान् मुख्य सिविल न्यायाधीश, केशोड द्वारा तारीख 9 मई, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है ।

2. संक्षेप में इस मामले के तथ्यों का इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है -- मूल वादियों ने ग्राम अजब, ताल्लुका केशोड जिला जूनागढ़ के क्षेत्र में स्थित कृषि भूमि के विभाजन और अन्त:कालीन लाभ के लिए 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 114 फाइल किया था । वादी द्वारा वाद में किए गए प्रकथनों के अनुसार ग्राम अजब के क्षेत्र में स्थित इस भूमि का माप कुल 16 एकड़ 6 गुंठा था और ये उनके पूर्वजों की संपत्ति थी और वे उक्त संपत्ति के सहदायिक हैं जिसका उल्लेख विशेष रूप से वादपत्र में किया गया है । इस भूमि के कुल चार खंड हैं । वादी के कथनानुसार प्रत्येक पक्ष का विवादित संपत्ति में बराबर भाग अर्थात् 1/6 भाग है और प्रतिवादी वाद संपत्ति के ऊपर काबिज हैं । वादियों ने अपने भाग तथा अन्त:कालीन लाभ के लिए अनुरोध किया है । वादियों द्वारा किए गए अनुरोध को प्रतिवादियों द्वारा वाद संपत्ति में उनके भागों को सुपुर्द करने से इनकार किया गया था इसलिए वादियों ने विभाजन और अन्त:कालीन लाभ इत्यादि के लिए उक्त अनुरोध करते हुए वाद फाइल किया था ।

3. प्रतिवादियों ने निचले न्यायालयों द्वारा जारी किए गए समनों के प्राप्त होने पर यह कहते हुए प्रदर्श-13 के अनुसार अपने-अपने लिखित कथन फाइल किए कि प्रतिवादियों और वादी सं. 2 से 4 के पिता अर्थात् भीमाभाई दाकी की हत्या हो गई थी और मुकदमेदारी में वृहत धनराशि खर्च हुई थी और वे ऋणी हो गए थे और इसलिए सभी वादियों ने संपत्ति प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दी थी और प्रतिवादी विवादित संपत्ति के संपूर्ण ऋण का संदाय करने के लिए सहमत हो गए थे । यह भी कहा गया है कि वादी वाद संपत्ति के ऊपर कृषि (खेती) नहीं करना चाहते थे और इसलिए उन्होंने विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दिया था । उन्होंने अपने पिता भीमाभाई दाकी के ऋणों का पहले ही संदाय कर दिया है । वादियों ने तात्विक तथ्यों को छुपाया है और वे न्यायालय के समक्ष ईमानदारी और सच्चाई के साथ नहीं आए हैं । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने पक्षकारों के अभिवचनों

पर विचार करने के पश्चात् प्रदर्श-14 के अनुसार विवाद्यक विरचित किए और पक्षकारों का साक्ष्य अभिलिखित किया । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जे. डी.), केशोड ने सभी पक्षकारों की दलीलें सुनने के पश्चात् तारीख 30 अक्तूबर, 2002 को वादियों के हक में वाद डिक्री कर दिया । प्रतिवादियों ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर विद्वान् जिला न्यायाधीश, जूनागढ़ के समक्ष 2002 की नियमित सिविल अपील सं. 79 फाइल की जो तारीख 17 फरवरी, 2011 को विनिश्चित कर दी गई थी और मामला कतिपय निदेशों के साथ विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया था । विचारण न्यायालय ने पक्षकारों का साक्ष्य पुन: अभिलिखित किया और 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 144 तारीख 9 मई, 2012 के निर्णय और डिक्री द्वारा वादियों के हक में डिक्री कर दिया । प्रतिवादियों ने तारीख 9 मई, 2012 के निर्णय से व्यथित होकर विद्वान् द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, जूनागढ़ के न्यायालय के समक्ष पुन: 2012 की नियमित सिविल अपील सं. 77 फाइल की । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, जूनागढ़ ने तारीख 7 अक्तूबर, 2016 के निर्णय और डिक्री द्वारा वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज करते हुए विद्वान् मुख्य सिविल न्यायाधीश, केशोड द्वारा 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 में तारीख 9 मई, 2012 को पारित निर्णय और प्रारंभिक डिक्री की पुष्टि की ।

4. वर्तमान अपीलार्थियों ने इस अपील के द्वारा विद्वान् द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश, जूनागढ़ द्वारा 2012 की नियमित सिविल अपील सं. 77 में पारित उक्त निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया है ।

5. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता को सुना गया ।

6. निचले न्यायालय तथा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित एक जैसे निष्कर्षों के विरुद्ध वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल की गई द्वितीय अपील में विधि के ऐसे कतिपय सारभूत प्रश्न उद्भूत हुए हैं जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

7. वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्न उठाए गए हैं :-

(i) क्या पुत्रियां 2005 से हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1955 में किए गए संशोधन से पूर्व वादियों के रूप में विभाजन के लिए कोई वाद फाइल करने के लिए हकदार हैं ?

(ii) जहां तक विवादित संपत्तियों में सर्वेक्षण सं. 32 का संबंध है, क्या वादियों का वाद पूर्व-न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है ?

(iii) क्या वादी सं. 4 विभाजन के लिए और विवादित संपत्ति में अपने 1/6 भाग की घोषणा के लिए वाद फाइल करने से विबद्ध है ?

(iv) क्या विद्वान् अपील न्यायाधीश द्वारा इस माननीय न्यायालय और माननीय भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों के अतिक्रमण में विवाद्यक विरचित किए गए हैं ?

(v) क्या वादियों द्वारा फाइल किया गया वाद विलंब के सिद्धांत और कमियों से ग्रसित है ?

(vi) क्या वादियों द्वारा फाइल किया गया वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित है ?

(vii) क्या 1999 का आर. सी. एस. सं. 114 सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के उपबंधों के अधीन पश्चात्वर्ती वाद होने के कारण रोक लगाए जाने योग्य है ?

8. चूंकि दोनों निचले न्यायालयों के निष्कर्ष एक जैसे हैं इसलिए अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की सम्मति से इस अपील की अंतिम रूप से सुनवाई की जा रही है ।

9. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता ने इस न्यायालय के विचारार्थ विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए दस्तावेजों की फाइल पेश की है ।

10. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय द्वारा निर्णय और डिक्री पारित करते समय साक्ष्य पर तथा अभिलेख पर समुचित रीति में विचार नहीं किया गया है । प्रत्यर्थी सं. 4-हरदास भीमाभाई दाकी ने सर्वेक्षण सं. 32 की भूमि के विभाजन के लिए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जे. डी.) केशोड के समक्ष 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 113 फाइल किया था और उस वाद में किए गए अनुरोध के अनुसार वह वाद संपत्ति में आधे भाग का हकदार था । वर्तमान अपील में सर्वेक्षण सं. 32 को भी सम्मिलित किया गया है । प्रत्यर्थी सं. 4-हरदास भीमाभाई दाकी ने 50 प्रतिशत भाग के लिए 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 113 फाइल किया था और इसके साथ ही साथ उसने 3 अन्य वादियों के साथ उक्त वाद फाइल करते हुए अन्य संपत्तियों के साथ-साथ वाद अन्तर्गत संपत्ति में 1/6 भाग के लिए अनुरोध किया था और इस बारे में उसने विशेष रूप से 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 के वादपत्र में भी उल्लेख किया था । 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 113 विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2005 के निर्णय और डिक्री द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 के हक में डिक्री किया गया था । उक्त निर्णय को प्रत्यर्थियों द्वारा जिला न्यायालय के समक्ष 2005 की नियमित सिविल अपील सं. 85 में आक्षेपित किया गया था । उक्त अपील मंजूर की गई थी और मामला कतिपय निदेशों के साथ विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया था । उक्त वाद विद्वान् सिविल न्यायाधीश, केशोड के न्यायालय के समक्ष लंबित है । यह भी दलील दी गई है कि पश्चात्वर्ती वाद अर्थात् 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के अधीन न्यायालय द्वारा रोक लगाई जानी थी क्योंकि दोनों वादों की विषयवस्तु एक जैसी थी । विचारण न्यायालय ने पश्चात्वर्ती वाद में रोक न लगाकर गंभीर गलती की है । सर्वेक्षण सं. 32 की विषयवस्तु के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा दो भिन्न-भिन्न डिक्रियां पारित की गई हैं । चूंकि निचले न्यायालय द्वारा इसके परिप्रेक्ष्य में इस पहलू पर कभी भी विचार नहीं किया गया इसलिए अंतत: न्याय की हानि हुई । वादियों का वाद विबंधन के सिद्धांत द्वारा वर्जित था क्योंकि वाद सं. 4 हरदास ने सर्वेक्षण सं. 32 में 50 प्रतिशत अंश के साथ 1999 का नियमित सिविल वाद सं. 113 फाइल किया था ।

पुत्रियां विभाजन के लिए वाद फाइल करने के लिए हकदार नहीं थीं । प्रतिवादियों द्वारा अभिलेख पर यह साबित कर दिया गया था कि प्रतिवादी सं. 1 लक्ष्मण ने अपने पिता के ऋण को पहले ही चुका दिया था और वादियों ने ऋण को चुकाने में कोई सहायता नहीं की थी । दोनों न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि इस संबंध में कोई दस्तावेजी अथवा मौखिक साक्ष्य पेश नहीं किया गया था । प्रथम अपील न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन फाइल की गई अपील में विवाद्यक विरचित नहीं किए जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन अपेक्षित है । विद्वान् अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के समर्थन में कतिपय निर्णयों का अवलंब लिया है । अंतत: अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा यह अनुरोध किया गया है कि वर्तमान अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील खारिज करते हुए 2012 की नियमित सिविल अपील सं. 77 में विद्वान् द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिखंडित और अपास्त किया जाए ।

11. अपीलार्थियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पेश किए गए अभिलेख का परिशीलन करने और अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को सुनने के पश्चात् यह विदित होता है कि वादियों ने विवादित संपत्ति में समान भाग अर्थात् 1/6 भाग का दावा किया है । प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन प्रदर्श-13 में यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादियों और वादी सं. 2 से 4 के पिता अर्थात् भीमा दाकी की हत्या कर दी गई थी और उस मुकदमेदारी में वृहत धनराशि खर्च हुई थी और वे ऋणी हो गए थे और इसलिए सभी वादियों ने संपत्ति प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दी थी और प्रतिवादी विवादित संपत्ति पर प्रभारित संपूर्ण ऋण का संदाय करने के लिए तैयार हो गए थे । प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में यह भी स्वीकार किया गया है कि उस समय वादियों ने यह भी सूचित किया था कि वे उक्त संपत्ति में खेती नहीं करना चाहते हैं और तद्द्वारा उन्होंने विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दिया था । तब से अब तक 20 वर्ष से अधिक की अवधि बीत चुकी है और प्रतिवादी तब से विवादित संपत्ति पर काबिज है क्योंकि उन्होंने अपने पिता भीमा दाकी के ऋण का संदाय किया था । यह अविवादित तथ्य है कि

विवादित संपत्ति पैतृक संपत्ति थी और राजस्व अभिलेखों में पक्षकारों के नामों की प्रविष्टियां संयुक्त रूप से की गई थीं । पक्षकार मृतक भीमा पुंजा दाकी के विधिक वारिस हैं । यदि हम विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करें और यह मान लें कि मृतक अर्थात् भीमा पुंजा के पिता की हत्या के कारण कुटुंब के ऊपर कोई ऋण था और कमजोर वित्तीय स्थिति के कारण विवादित संपत्ति का कब्जा वादियों द्वारा प्रतिवादियों के सुपुर्द कर दिया गया था तब भी यह किसी प्रकार से नहीं कहा जा सकता कि वादियों ने विवादित संपत्ति में अपने अधिकार छोड़ दिए थे अथवा अपने अधिकार त्यक्त कर दिए थे । यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी सं. 1 कुटुंब का कर्ता होने के कारण विवादित संपत्ति का कब्जा उसके सुपुर्द किया गया था तथापि, वादियों ने विवादित संपत्ति में अपने अधिकारों को कभी भी त्यक्त नहीं किया था । प्रतिवादियों द्वारा अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि उनके छोटे भाई और बहिनों के विवाह के खर्चे प्रतिवादियों द्वारा किए गए थे अथवा प्रतिवादियों द्वारा कोई नक़द धनराशि अथवा आभूषण दिए गए थे । यदि हम अभिलेख पर पेश किए गए दस्तावेजों अर्थात् प्रदर्श-44 और प्रदर्श-45 पर विचार करें तब लक्ष्मण भीमा दाकी के नाम पर 36,850/- रुपए का ऋण था तथापि, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादियों के पिता के विरुद्ध किसी ऋण के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है । प्रतिवादियों ने यह स्वीकार किया है कि प्रत्यक्षतया छह व्यक्ति मृतक भीमा पुंजा के प्राथमिक वारिस हैं । उन्होंने यह विवाद नहीं किया है कि वादियों का विवादित संपत्ति में कोई अधिकार, हक और हित नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने प्रत्येक पक्षकार के हक में 1/6 भाग मंजूर करते हुए वादियों द्वारा फाइल किए गए वाद को ठीक ही विनिश्चित किया है । विचारण न्यायालय द्वारा की गई चर्चा और निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई पुष्टि के आधार पर वादियों के हक में वर्ष 1999 से अन्त:कालीन लाभ भी मंजूर किए गए हैं । विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और प्रथम अपील न्यायालय द्वारा की गई पुष्टि को किसी भी प्रकार से अनुचित या अवैध नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये निष्कर्ष केवल

तथ्यात्मक पहलुओं के आधार पर पारित किए गए हैं ।

12. विवादित संपत्ति में वादियों के भाग के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष, प्रतिवादियों के पिता के ऋण, उनके द्वारा छोटे भाई और/या बहिनों के विवाह पर हुए खर्चे, प्रतिवादियों द्वारा की गई भूमि की खेती के संबंध में और विवादित संपत्ति में वादियों के भाग के संबंध में लिखित कथन में उनके द्वारा की गई स्वीकृतियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल की गई अपील में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता ।

13. अत: अपीलार्थियों द्वारा दलील दिए गए विधि के प्रश्न का वर्तमान अपीलार्थियों के विरुद्ध उत्तर दिया जाता है क्योंकि अपील में विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत होना नहीं पाया गया है । जहां तक श्री हरदास भीमाभाई दाकी द्वारा फाइल किए गए दूसरे वाद अर्थात् 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 113 का संबंध है, जिसमें ग्राम अजब के सर्वेक्षण सं. 32 पायकी में उपर्युक्त वाद में वादी को 1/2 भाग दिया गया है और विचारण न्यायालय के समक्ष विवाद अभी भी लंबित है, विचारण न्यायालयों द्वारा उक्त विवाद का मामले के इन तथ्यों पर कि उक्त वादी भी वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी सं. 4 है और वह 1999 के नियमित सिविल वाद सं. 114 में एक वादी भी है जिसे उक्त संपत्ति में 1/6 भाग मंजूर किया गया है, विचार करने के पश्चात् विनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है ।

14. इन संप्रेक्षणों के साथ यह अपील एतद्द्वारा खारिज की जाती है और तद्नुसार इसका निपटान किया जाता है ।

सिविल आवेदन में आदेश

15. मुख्य मामले में पारित आदेश को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान आवेदन का कोई महत्व नहीं रह जाता है और तद्नुसार इसका निपटान किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

महे.

(2019) 2 सि. नि. प. 497 गुवाहाटी

केन्द्रीय विद्यालय संगठन, करीमगंज, असम

बनाम

जगतज्योति कुमार दास उर्फ भोपाल दास द्वारा उसकी विधिक वारिस 1-(ए) मीरा दास और अन्य

(2008 की नियमित द्वितीय अपील सं. 68)

तारीख़ 24 जून, 2019

न्यायमूर्ति संजय कुमार मेधी

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 34 – हक़ की घोषणा और क़ब्जे के लिए वाद – संपत्ति के पूर्वतर स्वामी से वाद-संपत्ति क्रय करने वाले व्यक्ति से संपत्ति विक्रय विलेख द्वारा क्रय की जानी – विचारण न्यायालय द्वारा द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति सहित अभिलेख पर उपलब्ध समस्त सामग्री पर विचार करके वादी के हक़ में वाद डिक्री किया जाना – प्रतिवादियों द्वारा वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को किसी भी प्रकार से आक्षेपित न किया जाना – अपील न्यायालय द्वारा सामान्यतया द्वितीय अपील में निचले न्यायालय के मत को तब तक उलटना नहीं चाहिए जब तक कि निचले न्यायालय का मत स्पष्टतया विधिविरुद्ध या अनियमित न हो ।

आवेदक अधिकार, हकदारी, हित, कब्जे की पुष्टि की घोषणा के लिए और स्थायी व्यादेश जारी करने के लिए फाइल किए गए वाद में प्रतिवादी था । वादी का यह पक्षकथन है कि वाद-भूमि मूल रूप से श्री कलिका प्रसाद दास पुरकास्था की मिलकियत थी जो श्री जोगेन्द्र दास ने तारीख 8 अप्रैल, 1929 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 1203/1929 द्वारा क्रय की थी । श्री जोगेन्द्र दास की मृत्यु के पश्चात् वाद-भूमि (प्रदर्श सं. 1) उसके विधिक वारिस ज्योतिष चन्द्र दास जो वादी का पिता है, को विरासत में मिली थी । उक्त भूमि एक विल-विलेख (प्रदर्श-2) द्वारा वादी सहित उसकी पत्नी और तीन पुत्रों के स्वामित्वाधीन आ गई थी । आपसी विभाजन में वाद-भूमि वादी के हिस्से में आई । केन्द्रीय विद्यालय संगठन

ने वाद-भूमि के उत्तरी-पश्चिमी भाग पर अतिचार करने का प्रयत्न किया और इसलिए उक्त वाद संस्थित किया गया था । वर्तमान अपीलार्थी द्वारा वाद में प्रतिवादी के रूप में लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया गया था जिसमें यह दावा किया गया था कि करीमगंज में केन्द्रीय विद्यालय के स्थायी भवन के सन्निर्माण के प्रयोजन के लिए वाद-भूमि के संबंध में संगठन के साथ समझौता किया गया था । व्यवस्थापन आदेश तारीख 3 अगस्त, 2003 का है । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) ने तारीख 31 मार्च, 2006 के निर्णय और डिक्री द्वारा वादी के हक में वाद डिक्री कर दिया था । यह उल्लेख किया जा सकता है कि वादी और प्रतिवादी दोनों ने ही एक-एक पी. डब्ल्यू. (साक्षी) द्वारा साक्ष्य पेश किया था । विरचित किए गए विभिन्न विवाद्यकों में से विवाद्यक सं. 3 इस मामले में सुसंगत है । उक्त विवाद्यक वाद-भूमि के संबंध में वादी के भूमि-धारण अधिकार और कब्जे से संबंधित था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यह उपदर्शित है कि वादपत्र में किए गए अभिवचनों से प्रतिवादी ने इनकार नहीं किया है और प्रदर्शों से यह साबित होता है कि प्रश्नगत वाद-भूमि का स्वामी वादी था जिसे हकदारी कलिका प्रसाद दास पुरकास्था से मिली थी जो कि भूमि का मूल स्वामी था और जिसने विक्रय विलेख प्रदर्श-1 द्वारा भूमि वादी के पूर्व-हिताधिकारियों को विक्रीत कर दी थी । वर्तमान अपीलार्थी ने उपर्युक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध सिविल न्यायाधीश, करीमगंज के न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील फाइल की थी जो कि 2006 की हक अपील सं. 38 के रूप में दर्ज की गई थी । यह उल्लेख किया जा सकता है कि असम राज्य ने भी 2006 की हक अपील सं. 43 फाइल की थी और दोनों अपीलें साथ-साथ सुनी गई थीं । वर्तमान अपील विद्वान् सिविल न्यायाधीश, करीमगंज द्वारा 2006 की हक अपील सं. 38 में तारीख 7 सितंबर, 2007 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) सं. 1, करीमगंज द्वारा 2005 के हक वाद सं. 75 में तारीख 31 मार्च, 2006 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने वादी के हक में वाद डिक्री करते हुए तारीख 8 अप्रैल, 1929 के विक्रय विलेख की

प्रमाणित प्रति सहित अभिलेख पर की सभी सामग्री पर और विधिक निरीक्षण के ज्ञापन की प्रमाणित प्रति पर जिन्हें प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में कहीं भी आक्षेपित नहीं किया गया है, विचार में लिया था । विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को जिसकी विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, पूर्णतया त्रुटिपूर्ण और अनुचित नहीं कहा जा सकता । केवल इस तथ्य के कारण कि वैकल्पिक मत उपलब्ध है, सामान्यतया द्वितीय अपील में, अपील न्यायालय को विद्वान् निचले न्यायालय के मतों पर अपना मत प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए यदि ऐसा मत अन्यथा स्वीकार्य या संभव मत है । वर्तमान मामले में विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा दिए गए आक्षेपित निर्णय में कोई स्पष्ट अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । वर्तमान मामले में प्रदर्श सं. 1/विक्रय विलेख प्रमाणित प्रति है । इसके अतिरिक्त प्रतिरक्षा साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि केन्द्रीय विद्यालय की भूमि खंभे और सीमा दीवार तक सीमित थी न कि इससे परे और उसने यह भी स्वीकार किया है कि वाद-भूमि विवादित भूमि से परे है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए निचले न्यायालय के निष्कर्ष को अनुचित निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता । तद्नुसार इस न्यायालय का यह मत है कि इस अपील में हस्तक्षेप करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है और तद्नुसार यह अपील खारिज की जाती है । विधि के सारभूत प्रश्न का ऊपर की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार उत्तर दिया जाता है । (पैरा 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] 2015 का टी. ए. नं. 2 :
भास्कर राय चौधरी और एक अन्य बनाम
हिरोनमोय दास अस्तोपति उर्फ **राय अस्तोपति और अन्य** । 7

[1990] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 396 =
(1990) 1 एस. सी. सी. 266 :
कल्याण सिंह बनाम **श्रीमती छोटी और अन्य** । 10, 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की नियमित द्वितीय अपील सं. 68.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आर. सरमा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एस. डे और जी. बोरडोलोई, सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संजय कुमार मेधी – आवेदक के विद्वान् काउंसेल श्री आर. सरमा तथा प्रत्यर्थी सं. 1 जिसे इस न्यायालय द्वारा अंतरिम आवेदन (सी.)/1695/2018 में तारीख 11 जनवरी, 2019 को पारित आदेश द्वारा सम्यक् रूप से प्रतिस्थापित किया गया है, के विधिक वारिसों का प्रतिनिधित्व करने वाले विधिक प्रतिनिधि की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. डे को सुना गया ।

2. वर्तमान अपील विद्वान् सिविल न्यायाधीश, करीमगंज द्वारा 2006 की हक अपील सं. 38 में तारीख 7 सितंबर, 2007 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) सं. 1, करीमगंज द्वारा 2005 के हक वाद सं. 75 में तारीख 31 मार्च, 2006 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है ।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्यों का इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है :–

(क) आवेदक अधिकार, हकदारी, हित, कब्जे की पुष्टि की घोषणा के लिए और स्थायी व्यादेश जारी करने के लिए फाइल किए गए वाद में प्रतिवादी था । वादी का यह पक्षकथन है कि वाद-भूमि मूल रूप से श्री कलिका प्रसाद दास पुरकास्था की मिलकियत थी जो श्री जोगेन्द्र दास ने तारीख 8 अप्रैल, 1929 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 1203/1929 द्वारा क्रय की थी । श्री जोगेन्द्र दास की मृत्यु के पश्चात् वाद-भूमि (प्रदर्श सं. 1) उसके विधिक वारिस ज्योतिष चन्द्र दास जो वादी का पिता है, को विरासत में मिली थी । उक्त भूमि एक विल-विलेख (प्रदर्श-2) द्वारा वादी

सहित उसकी पत्नी और तीन पुत्रों के स्वामित्वाधीन आ गई थी । आपसी विभाजन में वाद-भूमि वादी के हिस्से में आई । केन्द्रीय विद्यालय संगठन ने वाद-भूमि के उत्तरी-पश्चिमी भाग पर अतिचार करने का प्रयत्न किया और इसलिए उक्त वाद संस्थित किया गया था । वर्तमान अपीलार्थी द्वारा वाद में प्रतिवादी के रूप में लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया गया था जिसमें यह दावा किया गया था कि करीमगंज में केन्द्रीय विद्यालय के स्थायी भवन के सन्निर्माण के प्रयोजन के लिए वाद-भूमि के संबंध में संगठन के साथ समझौता किया गया था । व्यवस्थापन आदेश तारीख 3 अगस्त, 2003 का है ।

(ख) विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) ने तारीख 31 मार्च, 2006 के निर्णय और डिक्री द्वारा वादी के हक में वाद डिक्री कर दिया था । यह उल्लेख किया जा सकता है कि वादी और प्रतिवादी दोनों ने ही एक-एक पी. डब्ल्यू. (साक्षी) द्वारा साक्ष्य पेश किया था । विरचित किए गए विभिन्न विवाद्यकों में से विवाद्यक सं. 3 इस मामले में सुसंगत है । उक्त विवाद्यक वाद-भूमि के संबंध में वादी के भूमि-धारण अधिकार और कब्जे से संबंधित था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यह उपदर्शित है कि वादपत्र में किए गए अभिवचनों से प्रतिवादी ने इनकार नहीं किया है और प्रदर्शों से यह साबित होता है कि प्रश्नगत वाद-भूमि का स्वामी वादी था जिसे हकदारी कलिका प्रसाद दास पुरकास्था से मिली थी जो कि भूमि का मूल स्वामी था और जिसने विक्रय विलेख प्रदर्श-1 द्वारा भूमि वादी के पूर्व-हिताधिकारियों को विक्रीत कर दी थी ।

(ग) वर्तमान अपीलार्थी ने उपर्युक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध सिविल न्यायाधीश, करीमगंज के न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील फाइल की थी जो कि 2006 की हक अपील सं. 38 के रूप में दर्ज की गई थी । यह उल्लेख किया जा सकता है कि असम राज्य ने भी 2006 की हक अपील सं. 43 फाइल की थी और दोनों अपीलें साथ-साथ सुनी गई थीं ।

(घ) विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने अभिवचनों और सामग्री- प्रदर्शों पर चर्चा करने के पश्चात् बिन्दु सं. 3 सहित अवधारण के लिए विभिन्न वाद-बिन्दु विरचित किए थे जो इस प्रकार हैं –

"क्या वाद-भूमि प्रदर्श विक्रय विलेख में वर्णित भूमि से संबंधित है अथवा वादी ने इस पर अतिचार किया है ?"

(ङ) विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने डी. डब्ल्यू. 1 के परिसाक्ष्य पर विचार किया जिसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा था कि केन्द्रीय विद्यालय संगठन को विद्यालय की सीमा दीवार और खंभों के परे भूमि पर दावा करने का अधिकार नहीं है और स्वीकृतत: वाद-भूमि उक्त केन्द्रीय विद्यालय संगठन की उक्त सीमा दीवार और खंभों के बाहर थी । उपर्युक्त चर्चा के आधार पर अपील तारीख 5 सितंबर, 2007 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई थी ।

(च) इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

4. इस न्यायालय ने अपील ग्रहण करते हुए अवधारण के लिए विधि का निम्नलिखित सारभूत प्रश्न विरचित किया था :–

"क्या हक-विलेख को साबित किए बिना किसी विभाजन-विलेख की प्रमाणित प्रति के आधार पर वादी के अधिकार, हक और हित को डिक्री किया जा सकता है ?"

5. अभिलेखों का भी जो मंगाए थे, परिशीलन किया गया ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री सरमा ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में प्रमाणित प्रति के संबंध में उपबंध की अपेक्षा का अनुसरण नहीं किया गया है और इसके अतिरिक्त प्रदर्श सं. 1 स्वाधीनता से पूर्व का था और प्रमाणित प्रति बांग्लादेश से प्राप्त की गई थी । उन्होंने यह भी दलील दी है कि प्रदर्श सं. 1 तथा प्रदर्श सं. 3 दोनों की सीमाओं को इस बारे में सुनिश्चित नहीं किया जा सकता कि वाद-भूमि वादी के हिस्से में आती है । विद्वान् काउंसेल ने व्यवस्थापन

आदेश का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि केन्द्रीय विद्यालय जैसे किसी संगठन का ऐसा कोई व्यक्तिगत हित नहीं होगा कि वह प्राइवेट व्यक्ति की भूमि का अतिक्रमण करे क्योंकि प्रश्नगत विवाद दो प्राइवेट व्यक्तियों के बीच नहीं है अपितु एक प्राइवेट व्यक्ति और एक संगठन के बीच है ।

7. विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा **भास्कर राय चौधरी और एक अन्य** बनाम **हिरोनमोय दास अस्तोपति** उर्फ **राय अस्तोपति और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है । इस न्यायालय ने उपर्युक्त निर्णय में इस बारे में चर्चा की है कि बंग्लादेश के प्राधिकारियों द्वारा जारी की गई प्रमाणित प्रति को भारत के न्यायालय में किस प्रकार वाद में साक्ष्य के एक विधिमान्य भाग के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 68, 69, 74, 76, 78 और 86 में यथा विहित सबूत की रीति के बारे में जो विक्रय को साबित करने के लिए अपेक्षित है, उक्त निर्णय में विशेष रूप से चर्चा की गई है ।

8. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल श्री डे ने यह दलील दी है कि कार्यवाही में दोनों पक्षों द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य और सामग्री पर विचार करने पर वाद-भूमि के स्वामित्व के बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है । विद्वान् काउंसेल श्री डे ने लिखित कथन जिसके द्वारा प्रतिवादी ने वादपत्र के अभिवचनों पर विचार करने के क्षेत्र के संबंध में कथन किया है, निर्देश करते हुए यह दलील दी है कि वादपत्र में जो वादी के पक्षकथन का आधार था, अधिकार और हक के बारे में किए गए अभिवचनों से किसी भी प्रकार से इनकार नहीं किया गया है । जहां तक वादपत्र के पैरा 11 में उल्लिखित तारीख 30 अगस्त, 2003 के व्यवस्थापन का संबंध है, यह दलील दी गई है कि क्योंकि उक्त व्यवस्थापन आदेश को किसी भी प्रकार से कार्यवाही में साबित नहीं किया गया है इसलिए इस बारे में प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए पक्षकथन का कोई आधार नहीं है । यह भी दलील दी गई है कि यदि प्रतिवादी

---

[1] 2015 का टी. ए. नं. 2.

तारीख 30 अगस्त, 2003 के व्यवस्थापन के आधार पर हकदार थे तब उन्हें इस बारे में प्रति-दावा संस्थित करना चाहिए था अथवा कम से कम ऐसे व्यवस्थापन आदेश को विधि के अनुसार साबित करना चाहिए था, जोकि नहीं किया गया है ।

9. इस न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए प्रयुक्त की जाने वाली परिसीमित शक्ति के मुद्दे पर श्री डे ने यह दलील दी है कि जब तक निचले न्यायालय के निर्णयों में कोई स्पष्ट अनियमितता या अनुचितता उपदर्शित नहीं होती है, हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त वर्तमान मामले में तथ्य के निष्कर्ष समवर्ती प्रकृति के हैं और इसलिए विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा निष्कर्ष साक्ष्य का मूल्यांकन करके और अभिवचनों की परीक्षा करके निकाला गया है ।

10. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने श्री डे ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कल्याण सिंह** बनाम **श्रीमती छोटी और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने उन दस्तावेजों को जिन्हें द्वितीयक साक्ष्य के रूप में पेश किया गया है, साबित करने की रीति अधिकथित की है ।

11. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर और एल. सी. आर. सहित इस न्यायालय के समक्ष पेश की गई सामग्री पर जिसका परिशीलन किया गया है, सम्यक् रूप से विचार किया गया ।

12. यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने वादी के हक में वाद डिक्री करते हुए तारीख 8 अप्रैल, 1929 के विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति सहित अभिलेख पर की सभी सामग्री पर और विधिक निरीक्षण के ज्ञापन की प्रमाणित प्रति पर जिन्हें प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में कहीं भी आक्षेपित नहीं किया गया है, विचार में लिया था । विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को जिसकी विद्वान् अपील

---

[1] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 396 = (1990) 1 एस. सी. सी. 266.

न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, पूर्णतया त्रुटिपूर्ण और अनुचित नहीं कहा जा सकता । केवल इस तथ्य के कारण कि वैकल्पिक मत उपलब्ध है, सामान्यतया द्वितीय अपील में, अपील न्यायालय को विद्वान् निचले न्यायालय के मतों पर अपना मत प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए यदि ऐसा मत अन्यथा स्वीकार्य या संभव मत है ।

13. वर्तमान मामले में विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा दिए गए आक्षेपित निर्णय में कोई स्पष्ट अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **कल्याण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रमाणित प्रति और मूल प्रति के बीच विभेद अधिकथित किया है और वर्तमान मामले में प्रदर्श सं. 1/विक्रय विलेख प्रमाणित प्रति है । इसके अतिरिक्त प्रतिरक्षा साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि केन्द्रीय विद्यालय की भूमि खंभे और सीमा दीवार तक सीमित थी न कि इससे परे और उसने यह भी स्वीकार किया है कि वाद-भूमि विवादित भूमि से परे है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए निचले न्यायालय के निष्कर्ष को अनुचित निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता । तद्नुसार इस न्यायालय का यह मत है कि इस अपील में हस्तक्षेप करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है और तद्नुसार यह अपील खारिज की जाती है । विधि के सारभूत प्रश्न का ऊपर की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार उत्तर दिया जाता है ।

14. रजिस्ट्री (कार्यालय) विद्वान् सिविल न्यायाधीश, करीमगंज के अभिलेख को तुरन्त वापस भेजे ।

15. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि इस कार्यवाही में पारित अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, अपील की खारिजी के अंतिम आदेश पारित होने के साथ रद्द किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

रवि शंकर त्रिपाठी प्रोप्राईटरशिप फर्म (मैसर्स), बिलासपुर, छत्तीसगढ़

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

तारीख़ 7 फरवरी, 2018

(2017 की रिट याचिका सं. 2527)

मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति शरद कुमार गुप्ता

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 – कतिपय वस्तुओं के प्रदाय और सन्निर्माण के लिए निविदा – तकनीकी बोली और वित्तीय बोली – जहां तकनीकी बोली अन्तर्वलित हो वहां प्रथमत: तकनीकी अर्हता का निर्धारण किया जाना चाहिए – प्राधिकारी तकनीकी बोली के निर्धारण के प्रक्रम पर उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, वित्तीय बोली का निर्देश करके बोली वापस नहीं ले सकते ।

तृतीय प्रत्यर्थी-नगर निगम ने आंतरिक जल प्रदाय, सेनेटरी और आंतरिक विद्युतीकरण इत्यादि सहित बहुमंज़िलीय इमारत के सन्निर्माण के लिए निविदा आमंत्रित की थी । याची बोली लगाने वालों में से एक था । उसने अन्यों के साथ तकनीकी बोली पूरी की थी । इसका यह अर्थ है कि उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जिन्होंने तकनीकियां बोलियां पूरी की थीं, विचार किया जाना था । उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की थी, वित्तीय बोलियों पर विचार करने पर यह पाया गया था कि याची ने निम्नतर निविदा बोली लगाई है और उसे एल. 1 के रूप में चिह्नित किया गया था । तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् तृतीय प्रत्यर्थी ने पुन: तकनीकी बोली खोली और उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली से तुलनात्मक मूल्यांकन किया जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी और उनमें याची भी एक था जिसे एल. 1

पर रखा गया था । इस आधार पर तृतीय प्रत्यर्थी ने यह निष्कर्ष निकाला कि उन व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने तकनीकी बोली नहीं लगाई थी, उद्धृत दरें याची की तकनीकी बोली की अपेक्षा निम्नतर थीं । इस परिकल्पना के आधार पर याची को संविदा अधिनिर्णीत किए बिना तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा निविदा रद्द की गई थी । अत: याची ने व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका फाइल की । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – लोक संविदाएं अधिनिर्णीत करने में पारदर्शिता खुली प्रतियोगिता की प्रक्रिया विकसित करके सुनिश्चित की जाती है । जहां तकनीकी मामले अन्तर्वलित हों वहां प्रथम निर्धारण तकनीकी अर्हता पर निर्भर होगा । तुलनात्मक तकनीकी अर्हता पर वित्तीय बोलियां बंद करके तकनीकी बोली के मूल्यांकन के प्रक्रम पर विचार किया जाएगा । जहां तकनीकी बोलियां का निर्धारण किया जाता है वहां अगले प्रक्रम पर बोलियों पर विचार किया जाएगा । तत्पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जो तकनीकी बोलियों के मूल्यांकन के प्रक्रम पर सफल हुए हैं, विचार किया जाएगा । तुलनात्मक दरों पर ऐसी विचारण वित्तीय बोली का मूल्यांकन कही जाती है । उस प्राधिकारी द्वारा जिसने निविदाएं आमंत्रित की हैं, वित्तीय बोली का मूल्यांकन करने और निम्नतर निविदा का पता लगाने के पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली का निर्देश करके जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, बोली वापस लेना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । यदि उन्हें अनुज्ञात किया जाता है तो इससे आवश्यक रूप से ऐसी मनमानी स्थिति उत्पन्न होगी जहां वित्तीय बोली का तुलनात्मक मूल्यांकन उन व्यक्तियों को ध्यान में रखकर किया जाएगा जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की है और जिन्होंने उसी श्रृंखला में तकनीकी बोली पूरी नहीं की है । उन व्यक्तियों के जिन्हें तकनीकी बोली के प्रक्रम के पश्चात् असमान रखा गया है, ऐसे विचार करना मानो उन्होंने संपुष्पी लाट गठित किया है, संविधान के अनुच्छेद 14 का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । असमान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 14 के समानता के अधिकार के

अतिक्रमण के बराबर होगा । तृतीय प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि प्रश्नगत प्रस्थापनाओं का आमंत्रण लोक परिक्षेत्र में अन्य किसी ज्ञात कारण के लिए लोक हित में विफल हुआ था और इसलिए रद्द किया गया था । परिणामत: यह कहा गया है कि निविदाओं के आमंत्रण का रद्दकरण बेहतर प्रतियोगिता सुनिश्चित करने के लिए किया गया था । यह एक ऐसा पक्का मानदंड नहीं है जिसे विधि में मान्यता दी जा सके क्योंकि यह लोक परिक्षेत्र में एक वशवर्ती और असुरक्षित क्षेत्र प्रदान करेगी । यह पारदर्शिता के लिए घातक होगी और लोक संविदाओं के क्षेत्र में अऋजुता उत्पन्न करेगी । ऐसी कोई दलील मामले के तथ्यों या परिस्थितियों के आधार पर नहीं दी जा सकती । उपर्युक्त कारणों से यह रिट याचिका सफल होती है और इसलिए याची प्रश्नगत संविदा अधिनिर्णीत किए जाने का हकदार है । (पैरा 3, 4 और 5)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका सं. 2527.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री बी. डी. गुरु

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री आर. के गुप्ता, एच. बी. अग्रवाल और श्रीमती प्रभा शर्मा

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन ने दिया ।

मु. न्या. राधाकृष्णन – हमने याची के विद्वान् काउंसेल और राज्य/प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से विद्वान् उप महाधिवक्ता तथा तृतीय प्रत्यर्थी-नगर निगम की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल को सुना ।

2. तृतीय प्रत्यर्थी-नगर निगम ने आंतरिक जल प्रदाय, सेनेटरी और आंतरिक विद्युतीकरण इत्यादि सहित बहुमंज़िलीय इमारत के सन्निर्माण के लिए निविदा आमंत्रित की थी । याची बोली लगाने वालों में से एक था । उसने अन्यों के साथ तकनीकी बोली पूरी की थी । इसका यह अर्थ है कि उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जिन्होंने तकनीकियां

बोलियां पूरी की थीं, विचार किया जाना था । उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की थी, वित्तीय बोलियों पर विचार करने पर यह पाया गया था कि याची ने निम्नतर निविदा बोली लगाई है और उसे एल. 1 के रूप में चिह्नित किया गया था । तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् तृतीय प्रत्यर्थी ने पुन: तकनीकी बोली खोली और उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली से तुलनात्मक मूल्यांकन किया जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी और उनमें याची भी एक था जिसे एल. 1 पर रखा गया था । इस आधार पर तृतीय प्रत्यर्थी ने यह निष्कर्ष निकाला कि उन व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने तकनीकी बोली नहीं लगाई थी, उद्धृत दरें याची की तकनीकी बोली की अपेक्षा निम्नतर थीं । इस परिकल्पना के आधार पर याची को संविदा अधिनिर्णीत किए बिना तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा निविदा रद्द की गई थी ।

3. लोक संविदाएं अधिनिर्णीत करने में पारदर्शिता खुली प्रतियोगिता की प्रक्रिया विकसित करके सुनिश्चित की जाती हैं । जहां तकनीकी मामले अन्तर्वलित हों वहां प्रथम निर्धारण तकनीकी अर्हता पर निर्भर होगा । तुलनात्मक तकनीकी अर्हता पर वित्तीय बोलियां बंद करके तकनीकी बोली के मूल्यांकन के प्रक्रम पर विचार किया जाएगा । जहां तकनीकी बोलियां का निर्धारण किया जाता है वहां अगले प्रक्रम पर बोलियों पर विचार किया जाएगा । तत्पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जो तकनीकी बोलियों के मूल्यांकन के प्रक्रम पर सफल हुए हैं, विचार किया जाएगा । तुलनात्मक दरों पर ऐसी विचारणा वित्तीय बोली का मूल्यांकन कही जाती है । उस प्राधिकारी द्वारा जिसने निविदाएं आमंत्रित की हैं, वित्तीय बोली का मूल्यांकन करने और निम्नतर निविदा का पता लगाने के पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली का निर्देश करके जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, बोली वापस लेना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । यदि उन्हें अनुज्ञात किया जाता है तो इससे आवश्यक रूप से ऐसी मनमानी स्थिति उत्पन्न होगी जहां वित्तीय बोली का तुलनात्मक मूल्यांकन उन व्यक्तियों को ध्यान में रखकर किया जाएगा जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की है और जिन्होंने उसी श्रृंखला में तकनीकी बोली पूरी नहीं की है । उन व्यक्तियों के जिन्हें

तकनीकी बोली के प्रक्रम के पश्चात् असमान रखा गया है, ऐसे विचार करना मानो उन्होंने संपुष्पी लाट गठित किया है, संविधान के अनुच्छेद 14 का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । असमान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 14 के समानता के अधिकार के अतिक्रमण के बराबर होगा ।

4. तृतीय प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि प्रश्नगत प्रस्थापनाओं का आमंत्रण लोक परिक्षेत्र में अन्य किसी ज्ञात कारण के लिए लोक हित में विफल हुआ था और इसलिए रद्द किया गया था । परिणामत: यह कहा गया है कि निविदाओं के आमंत्रण का रद्दकरण बेहतर प्रतियोगिता सुनिश्चित करने के लिए किया गया था । यह एक ऐसा पक्का मानदंड नहीं है जिसे विधि में मान्यता दी जा सके क्योंकि यह लोक परिक्षेत्र में एक वशवर्ती और असुरक्षित क्षेत्र प्रदान करेगी । यह पारदर्शिता के लिए घातक होगी और लोक संविदाओं के क्षेत्र में अऋजुता उत्पन्न करेगी । ऐसी कोई दलील मामले के तथ्यों या परिस्थितियों के आधार पर नहीं दी जा सकती ।

5. उपर्युक्त कारणों से यह रिट याचिका सफल होती है और इसलिए याची प्रश्नगत संविदा अधिनिर्णीत किए जाने का हकदार है ।

6. परिणामत: उपाबंध-पी/1 पुन: निविदा अभिखंडित करते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है और यह निदेश किया जाता है कि तारीख 7 जुलाई, 2017 के एन. आई. टी. के निबंधनों में और निविदा आमंत्रित करने की सूचना के जवाब में याची द्वारा की गई प्रस्थापना को मंजूर करते हुए याची के हक में कार्य आदेश जारी किया जाए । खर्चो के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 511 छत्तीसगढ़

नीलम अग्रवाल (श्रीमती)

बनाम

नगर निगम, रायपुर

तारीख़ 17 मई, 2019

(2009 की प्रथम अपील सं. 14)

न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा और न्यायमूर्ति (श्रीमती) विमला सिंह कपूर

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 34 और 37 – हक़दारी की घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए वाद – वादी द्वारा प्रतिवादी को भूमि पर से सन्निर्माण गिराने से रोकने और प्रतिकर दिलाने के लिए अनुरोध – राजस्व प्राधिकारियों द्वारा सीमांकन किए जाने पर यह प्रतीत होना कि वादी ने सरकारी भूमि पर अतिचार किया है – वादी द्वारा यह साबित करने में विफ़ल रहना कि सीमांकन विधि के प्रतिकूल या उसकी तथा उसके प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में किया गया था – वादी द्वारा सीमांकन रिपोर्ट को आक्षेपित न किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया जाना उचित है ।

वादी ने प्रतिवादी-नगर निगम, रायपुर (जिसे आगे संक्षेप में 'निगम' कहा गया है) को ग्राम मथपुरानिया, तहसील और जिला रायपुर स्थित खसरा सं. 221/10 और 221/14 पर जो वादी के स्वामित्व और कब्जे में है, वादी द्वारा सन्निर्मित भवन को गिराने से रोकने के लिए घोषणा जारी करने के लिए वाद फाइल किया था । वादी ने यह भी अनुरोध किया है कि भवन का उक्त भाग जो निगम द्वारा पूर्व में गिरा दिया गया था, वादी द्वारा पुन: निर्मित किया गया था और इसलिए उसने इस घोषणा के साथ प्रतिकर दिलाने का अनुरोध किया है और यह भी अनुरोध किया है कि निगम के जोन-6 द्वारा तारीख 1 मई, 2006 को

जारी ज्ञापन, जिसके द्वारा वादी को सरकारी भूमि पर अतिचार करने के रूप में माना गया है, अवैध और विधि के प्रतिकूल घोषित किया जाए । वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन यह प्रथम अपील दशम् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक न्यायालय), रायपुर द्वारा 2006 के सिविल वाद सं. 13-ए में तारीख 6 जनवरी, 2009 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी-वादी का घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए वाद खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 24 अप्रैल, 2006 को सीमांकन किए जाने के समय स्थल पर तैयार किया गया पंचनामा (प्रदर्श डी/1) का उच्च न्यायालय के आदेश में निर्देश है जिसके द्वारा राजस्व प्राधिकारियों के समक्ष सीमांकन के लिए आवेदन करने के लिए निगम को अनुज्ञात किया गया है । यह कहा गया है कि राजस्व निरीक्षक नंद कुमार दुबे और बी. आर. साऊ, पटवारी नीरज प्रताप सिंह और राजस्व विभाग के दो अन्य कर्मचारी अर्थात् टीकाराम देवांगन और विष्णु ठाकुर ने सीमांकन किया था । यह भी अभिलिखित किया गया है कि सीमांकन के समय निगम का उप-इंजीनियर योगेन्द्र वर्मा और वादी का प्रतिनिधित्व करने वाला कैलाश माणिक पुरी भी स्थल पर मौजूद था । अपनी उपस्थिति स्वीकार करने के रूप में पंचनामे पर कैलाश माणिक पुरी के हस्ताक्षर मौजूद हैं । रिपोर्ट (प्रदर्श पी/3) में यह भी अभिलिखित है कि सीमांकन के समय वादी का प्रतिनिधि कैलाश माणिक पुरी मौजूद था । रिपोर्ट के अनुसार खसरा सं. 220 और 221/1 क्रमश: क्षेत्रफल 0.263 हेक्टेयर 14.929 हेक्टेयर गोकुल नगर योजना के लिए निगम द्वारा ट्रेचिंग मैदान के लिए निगम को आबंटित किया गया है और वादी ने उक्त खसरा संख्याओं के ऊपर 10,100 वर्ग मीटर माप के क्षेत्र पर अतिचार कर लिया है । यह उल्लेख करना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि वादी श्रीमती नीलम अग्रवाल (पी. डब्ल्यू. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 15 में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि कैलाश माणिक पुरी उसका नातेदार है । यद्यपि उसने इस बात से इनकार किया है कि कैलाश माणिक पुरी सीमांकन के समय उसकी ओर से उपस्थित था तथापि,

उसने इसके तुरंत पश्चात् स्वयं यह कहा है कि यदि उसकी ओर से कोई उपस्थित हुआ था तो उसे इस तथ्य के बारे में जानकारी नहीं है । पी. डब्ल्यू. 2 संतोष अग्रवाल ने जो वादी का देवर (ब्रदर-इन-ला) है, अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 11 में यह कहा है कि कैलाश माणिक पुरी सीमांकन के समय स्थल पर यह बताने के लिए गया था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल मौजूद नहीं है । अत: साक्षी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कैलाश माणिक पुरी सीमांकन के समय स्थल पर मौजूद था । इस कारण से वादी द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि कैलाश माणिक पुरी के हस्ताक्षर कूटरचित हैं या बाद में लिए गए थे । यह भी महत्वपूर्ण है कि वादी ने कैलाश माणिक पुरी की अपने साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं कराई है जिसके कारण प्रतिकूल उपधारणा की जा सकती है । यदि कैलाश माणिक पुरी केवल यह बताने के लिए सीमांकन के समय उपस्थित हुआ था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल मौजूद नहीं है तो कैलाश माणिक पुरी की परीक्षा कराने के लिए वादी के रास्ते में कुछ भी नहीं आता था, जो यह कहने के लिए एक बेहतर साक्षी था कि उसने वादी श्रीमती नीलम अग्रवाल के प्रतिनिधि के रूप में पंचनामा (प्रदर्श डी/1) के ऊपर हस्ताक्षर नहीं किए थे । वादी द्वारा सीमांकन को दोषपूर्ण बताने वाले अभिवाक् को गलत साबित करने के लिए राजस्व निरीक्षक नंद कुमार दुबे (डी. डब्ल्यू. 2) की परीक्षा कराई गई थी । इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि सीमांकन के समय श्रीमती नीलम अग्रवाल के लिए माणिक पुरी नाम का व्यक्ति उपस्थित था । इस साक्षी ने यह भी कहा है कि माणिक पुरी मामले के संपूर्ण अभिलेख के साथ उपस्थित हुआ था जिससे विवक्षित रूप से यह उपदर्शित होता था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल ने अपने स्वयं के दस्तावेज कैलाश माणिक पुरी के सुपुर्द करके उसे अपनी ओर से प्राधिकृत किया था । यह निष्कर्ष निकालना पूर्णतया नैसर्गिक होगा कि कोई व्यक्ति जिसके कब्जे में मुकदमेदारी के पक्षकार से संबंधित दस्तावेज हैं, संबंधित पक्षकार द्वारा प्राधिकृत किए जाने के पश्चात् ही किसी कार्यवाही में उपस्थित होगा । यदि डी. डब्ल्यू. 2 नंद कुमार दुबे के साक्ष्य को श्रीमती नीलम अग्रवाल पी. डब्ल्यू. 1 की स्वीकारोक्ति और पी. डब्ल्यू. 2 संतोष अग्रवाल के इस साक्ष्य के साथ कि माणिक पुरी वादी का नातेदार है और

माणिक पुरी यह बताने के लिए स्थल पर गया था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल मौजूद नहीं है, पढ़ा जाए तो यह पुख्ता निष्कर्ष निकलता है कि माणिक पुरी सीमांकन के समय श्रीमती नीलम अग्रवाल के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुआ था । डी. डब्ल्यू. 2 नंद कुमार दुबे ने सीमांकन कागज-पत्र प्रदर्श डी/1 से प्रदर्श डी/3 साबित किए हैं । प्रतिवादी के दूसरे साक्षी योगेन्द्र वर्मा, उप-इंजीनियर, नगर निगम, रायपुर (डी. डब्ल्यू. 3) ने अपने कथन के पैरा 1 में स्पष्टतया यह अभिकथन दिया है कि सीमांकन रिपोर्ट के आधार पर यह पाया गया था कि वादी ने खसरा सं. 220 और खसरा सं. 221/1 में 10,100 वर्गमीटर क्षेत्र पर अतिचार कर लिया है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 5 में यह कहा है कि कैलाश माणिक पुरी वादी का एक कर्मचारी है और वह सीमांकन के समय स्थल पर मौजूद था । वर्तमान मामले में यह पाया गया है कि वादी खसरा सं. 221/10 और खसरा सं. 221 /14 की स्वामी है और सीमांकन के समय यह पाया गया था कि वादी ने खसरा सं. 220 और खसरा सं. 221/1 के 10,100 वर्गमीटर क्षेत्र पर अतिचार कर लिया है । अत: वादी की अपनी भूमि के ऊपर उसके कब्जे के बारे में कोई विवाद नहीं है । जब एक बार अतिचार साबित हो जाता है तब भूमि की पहचान या स्थान के बारे में कोई विवाद नहीं रहता है । अत: अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों से उसे इस मामले में कोई सहायता नहीं मिलती है । उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्टतया उपदर्शित होता है कि वादी यह साबित करने में विफल रही है कि सीमांकन रिपोर्ट विधि के प्रतिकूल है अथवा यह रिपोर्ट वादी या उसके प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में तैयार की गई थी । जब एक बार सीमांकन रिपोर्ट से यह साबित हो जाता है कि वादी ने खसरा सं. 220 और 221/1 की 10,100 वर्गमीटर भूमि पर अतिचार कर लिया है तब विचारण न्यायालय द्वारा यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला गया है कि वादी का वाद खारिज किए जाने की आवश्यकता है और इसलिए विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज करने में कोई त्रुटि कारित नहीं की है । न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में ऐसी कोई अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है जिसके आधार पर वर्तमान प्रथम अपील में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो । (पैरा 13, 15, 16, 17, 18, 19, 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] ए. आई. आर. 2009 (एन. ओ. सी.) 2008 (एम. पी.) = 2009 (2) एम. पी. एल. जे. 429 : **जगदीश प्रसाद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 20

[2000] 2000 (1) एम. पी. एल. जे. 79 : **लक्ष्मण सिंह पुत्र मेहरबान सिंह** बनाम **जगन नाथ पुत्र मंसा राम** । 20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की प्रथम अपील सं. 14.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजीव श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एच. बी. अग्रवाल, ज्येष्ठ अधिवक्ता और सुश्री दीपाली दुबे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन यह प्रथम अपील दशम अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय), रायपुर द्वारा 2006 के सिविल वाद सं. 13-ए में तारीख 6 जनवरी, 2009 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी-वादी का घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए वाद खारिज किया गया है ।

2. वादी ने प्रतिवादी-नगर निगम, रायपुर (जिसे आगे संक्षेप में 'निगम' कहा गया है) को ग्राम मथपुरानिया, तहसील और जिला रायपुर स्थित खसरा सं. 221/10 और 221/14 पर जो वादी के स्वामित्व और कब्जे में है, वादी द्वारा सन्निर्मित भवन को गिराने से रोकने के लिए घोषणा जारी करने के लिए वाद फाइल किया था । वादी ने यह भी अनुरोध किया है कि भवन का उक्त भाग जो निगम द्वारा पूर्व में गिरा

दिया गया था, वादी द्वारा पुन: निर्मित किया गया था और इसलिए उसने इस घोषणा के साथ प्रतिकर दिलाने का अनुरोध किया है और यह भी अनुरोध किया है कि निगम के जोन-6 द्वारा तारीख 1 मई, 2006 को जारी ज्ञापन, जिसके द्वारा वादी को सरकारी भूमि पर अतिचार करने के रूप में माना गया है, अवैध और विधि के प्रतिकूल घोषित किया जाए ।

3. वादी के अनुसार ग्राम मथपुरानिया, तहसील और जिला रायपुर के पी. एच. सं. 105 में स्थित भूमि खसरा सं. 221/10 क्षेत्रफल 0.485 हेक्टेयर और खसरा सं. 221/14 क्षेत्रफल 0.324 हेक्टेयर का जिसकी वह स्वामी और काबिज है और जिसे गैर-कृषि प्रयोजनों के लिए परिवर्तित किया गया है, अवैध रूप से सीमांकन किया गया था और इसके पश्चात् वाद भूमि के ऊपर सन्निर्मित भाग को गिराया गया था और अब पुन: निगम इसे गिराना चाहता है । यद्यपि वादी ने इसके शेष भाग के लिए सुसंगत समय पर संबंधित ग्राम पंचायत से अपेक्षित भवन अनुज्ञा प्राप्त की है और यह क्षेत्र ग्राम पंचायत की भौगोलिक सीमाओं के भीतर आता था जिसे बाद में निगम की सीमाओं के भीतर सम्मिलित किया गया था । वादी ने यह भी अभिकथित किया है कि निगम द्वारा प्राप्त की गई सीमांकन रिपोर्ट राजस्व प्राधिकारियों से दुरभिसंधि करके प्राप्त की गई है और यह प्रथमदृष्ट्या इस कारण से अवैध है कि उक्त सीमांकन की सूचना वादी को उस पते से भिन्न स्थान पर भेजी गई थी जिस पर वादी के ऊपर पूर्वतर सूचनाओं की तामील की गई थी ।

4. वादी ने पूर्व में 2004 की रिट याचिका सं. 1867 प्रस्तुत की थी जिसमें वादी के हक में अंतरिम आदेश मंजूर किया गया था जिसके द्वारा प्रत्यर्थियों को विहित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना ढांचे को गिराने से निवारित किया गया था । अंतत: रिट याचिका तारीख 11 अप्रैल, 2005 को निपटाई गई थी जिसमें निगम के काउंसेल की इस दलील को अभिलिखित किया गया था कि वादी को विधि के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना विवादित भूमि से बेदखल नहीं किया जाएगा । इस आदेश में वादी के लिए यह स्वतंत्रता परिरक्षित की गई थी कि वह नया वाद-हेतुक उत्पन्न होने की दशा में विधि के अधीन उपलब्ध समुचित कार्यवाहियां करने के लिए स्वतंत्र होगी ।

5. इसके पश्चात् वादी ने 2005 की रिट याचिका सं. 3048 प्रस्तुत की थी जिसमें तारीख 15 जुलाई, 2005 को यथास्थिति आदेश पारित किया गया था और इसके पश्चात् इस न्यायालय द्वारा तारीख 24 अगस्त, 2005 को रिट याचिका का निपटान कर दिया गया था जिसमें निगम को दोनों पक्षों की उपस्थिति में याची (हमारे समक्ष के वादी) तथा प्रत्यर्थी सं. 4 (प्रतिवादी) से संबंधित भूमि का सीमांकन करने के लिए राजस्व विभाग में समावेदन करने के लिए अनुज्ञात किया गया था । इसके पश्चात् याची ने 2006 की दूसरी रिट याचिका 2735 भी फाइल की थी जिसमें तारीख 12 जून, 2006 को यथास्थिति कायम रखने का अंतरिम आदेश पारित किया गया था, तथापि, यह अभिनिर्धारित करते हुए तारीख 10 जुलाई, 2006 को रिट याचिका का निपटान कर दिया गया था कि चूंकि मामले में तथ्यों के विवादित प्रश्न अन्तर्वलित हैं इसलिए याची (वादी) से यह अपेक्षित है कि वह अपनी शिकायत के निवारण के लिए सिविल न्यायालय में समावेदन करे किन्तु इसके साथ ही साथ निगम को सात दिनों की अवधि तक आगे गिराने की कोई कार्यवाही करने से निवारित किया गया था ।

6. इसके पश्चात् वादी ने निचले न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जिसे 2006 के एम. जे. सी. सं. 30 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था तथापि, आवेदन तारीख 14 जुलाई, 2006 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि वादपत्र फाइल किए बिना सिविल प्रकिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन कोई आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । इसके पश्चात् वादी ने इस न्यायालय के समक्ष 2006 की एम. ए. सी. सं. 868 फाइल की थी जिसमें तारीख 17 जुलाई, 2006 को यथास्थिति रखने का आदेश पारित किया गया था और परिणामस्वरूप अपील तारीख 20 सितंबर, 2006 को मंजूर की गई थी जिसके द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित किया गया था और मामला वादी द्वारा पेश किए गए आवेदन को पक्षकारों को सुनने का अवसर देने के पश्चात् गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित करने के लिए वापस भेजा गया था । इस दौरान निगम को

गिराने की कोई कार्यवाही करने से रोका गया था । प्रतिप्रेषण के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा सिविल प्रकिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन वादी का आवेदन तारीख 29 मार्च, 2017 को खारिज किया गया था तथापि, समान आवेदन तारीख 11 मई, 2007 को मंजूर किया गया था जिसके द्वारा निगम को वाद-भूमि के ऊपर वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका गया था ।

7. इस तथ्यात्मक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए वादी ने यह प्रकथन किया कि वह वाद-भूमि के ऊपर अपना कब्जा बनाए रखने की हकदार है और निगम को ढांचे को गिराने से रोका जाना चाहिए ।

8. निगम ने वादपत्र में किए गए अभिकथनों से इनकार करते हुए वाद का विरोध किया । निगम द्वारा यह कहा गया था कि वादी को सूचना जारी करने के पश्चात् विधि के अनुसार सीमांकन किया गया था और यह पाया गया था कि वादी ने सीमांकन से संबंधित भूमि पर जो सरकार की भूमि थी, अतिचार करते हुए सन्निर्माण कर लिया था ।

9. विचारण न्यायालय ने अवधारण के लिए चार विवाद्यक विरचित किए । प्रथम विवाद्यक वाद-भूमि के ऊपर वादी के स्वामित्व से संबंधित है जो उसके हक में विनिश्चित किया गया है । द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ विवाद्यक इस आशय का है कि क्या सीमांकन अवैध था और क्या निगम द्वारा जारी किया गया तारीख 1 मई, 2006 का ज्ञापन जिसके द्वारा वादी को सरकारी भूमि पर अतिचारी माना गया है, अवैध है और क्या वादी स्थायी व्यादेश के लिए हकदार है । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि वादी वाद-भूमि का स्वामी है तथापि, विचारण न्यायालय ने अन्य विवाद्यकों के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया कि राजस्व अधिकारियों द्वारा किए गए सीमांकन में कोई अवैधता नहीं है और चूंकि उक्त सीमांकन के आधार पर यह पाया गया है कि वादी ने सरकारी भूमि पर अतिचार किया है, इसलिए वादी के हक में स्थायी व्यादेश की डिक्री मंजूर नहीं की जा सकती ।

10. अपीलार्थी-वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि सीमांकन विधि के अनुसार नहीं किया गया था

इसलिए सीमांकन रिपोर्ट अपने आप में दोषपूर्ण है और परिणामत: निगम द्वारा जारी की गई सूचना भी अवैध बन जाती है और इसलिए वादी का वाद उसके हक में डिक्री किया जाना चाहिए ।

11. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादी सीमांकन रिपोर्ट जिसे अभिकथित रूप से दोषपूर्ण बताया गया है, के संबंध में कोई अवैधता उपदर्शित करने में विफल रही है और चूंकि वादी इस भार का निर्वहन नहीं कर सकी है इसलिए वाद ठीक ही खारिज किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि सभी पक्षकारों को सूचनाएं जारी की गई थीं और सीमांकन रिपोर्ट पर चार व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किए हैं और इससे यह साबित होता है कि वादी ने सरकारी भूमि पर अतिचार किया है ।

12. पक्षकारों के बीच मुख्यतया इस बात पर विवाद है कि वादी के अनुसार सीमांकन रिपोर्ट (प्रदर्श डी/3) समुचित रूप से नहीं दी गई है तथापि, प्रतिवादी ने उक्त सीमांकन रिपोर्ट का समर्थन किया है । वस्तुत: खसरा सं. 221/10 और 221/14 पर वादी का स्वामित्व विवादित नहीं है । यह विनिश्चित किया जाना है कि क्या वादी ने सरकारी भूमि का अतिचार किया है या अपनी भूमि पर सन्निर्माण किया है ।

13. तारीख 24 अप्रैल, 2006 को सीमांकन किए जाने के समय स्थल पर तैयार किया गया पंचनामा (प्रदर्श डी/1) का उच्च न्यायालय के आदेश में निर्देश है जिसके द्वारा राजस्व प्राधिकारियों के समक्ष सीमांकन के लिए आवेदन करने के लिए निगम को अनुज्ञात किया गया है । यह कहा गया है कि राजस्व निरीक्षक नंद कुमार दुबे और बी. आर. साऊ, पटवारी नीरज प्रताप सिंह और राजस्व विभाग के दो अन्य कर्मचारी अर्थात् टीकाराम देवांगन और विष्णु ठाकुर ने सीमांकन किया था । यह भी अभिलिखित किया गया है कि सीमांकन के समय निगम का उप-इंजीनियर योगेन्द्र वर्मा और वादी का प्रतिनिधित्व करने वाला कैलाश माणिक पुरी भी स्थल पर मौजूद था । अपनी उपस्थिति स्वीकार करने के रूप में पंचनामे पर कैलाश माणिक पुरी के हस्ताक्षर मौजूद हैं ।

रिपोर्ट (प्रदर्श पी/3) में यह भी अभिलिखित है कि सीमांकन के समय वादी का प्रतिनिधि कैलाश माणिक पुरी मौजूद था । रिपोर्ट के अनुसार खसरा सं. 220 और 221/1 क्रमश: क्षेत्रफल 0.263 हेक्टेयर 14.929 हेक्टेयर गोकुल नगर योजना के लिए निगम द्वारा ट्रेचिंग मैदान के लिए निगम को आबंटित किया गया है और वादी ने उक्त खसरा संख्याओं के ऊपर 10,100 वर्गमीटर माप के क्षेत्र पर अतिचार कर लिया है ।

14. अपीलार्थी ने मुख्यतया यह दलील देते हुए सीमांकन रिपोर्ट को आक्षेपित किया है कि सीमांकन विधि के अनुसार नहीं किया गया था तथापि, विचारण न्यायालय के आदेश-पत्रक सहित यह किसी भी प्रकार से उपदर्शित नहीं होता है कि अपीलार्थी ने उस समय कभी भी सीमांकन रिपोर्ट के विरुद्ध कोई आक्षेप किया था जब उच्च न्यायालय द्वारा 2005 की रिट याचिका सं. 3048 में तारीख 24 अगस्त, 2005 को पारित आदेशों के अधीन राजस्व प्राधिकारियों द्वारा सीमांकन किया गया था । अपीलार्थी ने उच्चतर राजस्व प्राधिकारियों के समक्ष न तो कोई अपील फाइल की और न ही आगे कोई रिट याचिका विशेषतया सीमांकन रिपोर्ट (प्रदर्श डी/3) को आक्षेपित करते हुए आक्षेप फाइल किया । अत: अपीलार्थी ने रिपोर्ट को स्वीकार किया था । अन्यथा भी, राजस्व अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए पंचनामे (प्रदर्श डी/1) में स्पष्ट रूप से ऐसे व्यक्ति के रूप में कैलाश माणिक पुरी का नाम प्रकट किया गया है जो अपीलार्थी-वादी श्रीमती नीलम अग्रवाल के प्रतिनिधि के रूप में सीमांकन के समय उपस्थित था ।

15. यह उल्लेख करना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि वादी श्रीमती नीलम अग्रवाल (पी. डब्ल्यू. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा के पैरा 15 में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि कैलाश माणिक पुरी उसका नातेदार है । यद्यपि उसने इस बात से इनकार किया है कि कैलाश माणिक पुरी सीमांकन के समय उसकी ओर से उपस्थित था तथापि, उसने इसके तुरंत पश्चात् स्वयं यह कहा है कि यदि उसकी ओर से कोई उपस्थित हुआ था तो उसे इस तथ्य के बारे में जानकारी नहीं है । पी. डब्ल्यू. 2 संतोष अग्रवाल ने जो वादी का देवर (ब्रदर-इन-ला) है, अपनी प्रतिपरीक्षा

के पैरा 11 में यह कहा है कि कैलाश माणिक पुरी सीमांकन के समय स्थल पर यह बताने के लिए गया था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल मौजूद नहीं है । अत: साक्षी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कैलाश माणिक पुरी सीमांकन के समय स्थल पर मौजूद था । इस कारण से वादी द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि कैलाश माणिक पुरी के हस्ताक्षर कूटरचित हैं या बाद में लिए गए थे ।

16. यह भी महत्वपूर्ण है कि वादी ने कैलाश माणिक पुरी की अपने साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं कराई है जिसके कारण प्रतिकूल उपधारणा की जा सकती है । यदि कैलाश माणिक पुरी केवल यह बताने के लिए सीमांकन के समय उपस्थित हुआ था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल मौजूद नहीं है तो कैलाश माणिक पुरी की परीक्षा कराने के लिए वादी के रास्ते में कुछ भी नहीं आता था, जो यह कहने के लिए एक बेहतर साक्षी था कि उसने वादी श्रीमती नीलम अग्रवाल के प्रतिनिधि के रूप में पंचनामा (प्रदर्श डी/1) के ऊपर हस्ताक्षर नहीं किए थे ।

17. वादी द्वारा सीमांकन को दोषपूर्ण बताने वाले अभिवाक् को गलत साबित करने के लिए राजस्व निरीक्षक नंद कुमार दुबे (डी. डब्ल्यू. 2) की परीक्षा कराई गई थी । इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि सीमांकन के समय श्रीमती नीलम अग्रवाल के लिए माणिक पुरी नाम का व्यक्ति उपस्थित था । इस साक्षी ने यह भी कहा है कि माणिक पुरी मामले के संपूर्ण अभिलेख के साथ उपस्थित हुआ था जिससे विवक्षित रूप से यह उपदर्शित होता था कि श्रीमती नीलम अग्रवाल ने अपने स्वयं के दस्तावेज कैलाश माणिक पुरी के सुपुर्द करके उसे अपनी ओर से प्राधिकृत किया था । यह निष्कर्ष निकालना पूर्णतया नैसर्गिक होगा कि कोई व्यक्ति जिसके कब्जे में मुकदमेदारी के पक्षकार से संबंधित दस्तावेज हैं, संबंधित पक्षकार द्वारा प्राधिकृत किए जाने के पश्चात् ही किसी कार्यवाही में उपस्थित होगा ।

18. यदि डी. डब्ल्यू. 2 नंद कुमार दुबे के साक्ष्य को श्रीमती नीलम अग्रवाल पी. डब्ल्यू. 1 की स्वीकारोक्ति और पी. डब्ल्यू. 2 संतोष अग्रवाल के इस साक्ष्य के साथ कि माणिक पुरी वादी का नातेदार है और माणिक पुरी यह बताने के लिए स्थल पर गया था कि श्रीमती नीलम

अग्रवाल मौजूद नहीं है, पढ़ा जाए तो यह पुख्ता निष्कर्ष निकलता है कि माणिक पुरी सीमांकन के समय श्रीमती नीलम अग्रवाल के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुआ था । डी. डब्ल्यू. 2 नंद कुमार दुबे ने सीमांकन कागज-पत्र प्रदर्श डी/1 से प्रदर्श डी/3 साबित किए हैं ।

19. प्रतिवादी के दूसरे साक्षी योगेन्द्र वर्मा, उप-इंजीनियर, नगर निगम, रायपुर (डी. डब्ल्यू. 3) ने अपने कथन के पैरा 1 में स्पष्टतया यह अभिकथन दिया है कि सीमांकन रिपोर्ट के आधार पर यह पाया गया था कि वादी ने खसरा सं. 220 और खसरा सं. 221/1 में 10,100 वर्गमीटर क्षेत्र पर अतिचार कर लिया है । इस साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा के पैरा 5 में यह कहा है कि कैलाश माणिक पुरी वादी का एक कर्मचारी है और वह सीमांकन के समय स्थल पर मौजूद था ।

20. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा **लक्ष्मण सिंह पुत्र मेहरबान सिंह** बनाम **जगन नाथ पुत्र मंसा राम**[1] के मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया है जिसमें संपत्ति की पहचान के बारे में चर्चा की गई है और इसके अतिरिक्त काउंसेल ने **जगदीश प्रसाद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में एक अन्य निर्णय का भी अवलंब लिया है जिसमें आयुक्त की रिपोर्ट की विधिमान्यता पर विचार किया गया था जहां सही स्थान को सुनिश्चित किए बिना सीमांकन किया गया था ।

21. वर्तमान मामले में यह पाया गया है कि वादी खसरा सं. 221/10 और खसरा सं. 221 /14 की स्वामी है और सीमांकन के समय यह पाया गया था कि वादी ने खसरा सं. 220 और खसरा सं. 221/1 के 10,100 वर्गमीटर क्षेत्र पर अतिचार कर लिया है । अत: वादी की अपनी भूमि के ऊपर उसके कब्जे के बारे में कोई विवाद नहीं है । जब एक बार अतिचार साबित हो जाता है तब भूमि की पहचान या स्थान के बारे में कोई विवाद नहीं रहता है । अत: अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों से उसे इस मामले में कोई सहायता नहीं मिलती है ।

---

[1] 2000 (1) एम. पी. एल. जे. 79.

[2] ए. आई. आर. 2009 (एन. ओ. सी.) 2008 (एम. पी.) = 2009 (2) एम. पी. एल. जे. 429.

22. उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्टतया उपदर्शित होता है कि वादी यह साबित करने में विफल रही है कि सीमांकन रिपोर्ट विधि के प्रतिकूल है अथवा यह रिपोर्ट वादी या उसके प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में तैयार की गई थी ।

23. जब एक बार सीमांकन रिपोर्ट से यह साबित हो जाता है कि वादी ने खसरा सं. 220 और 221/1 की 10,100 वर्गमीटर भूमि पर अतिचार कर लिया है तब विचारण न्यायालय द्वारा यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला गया है कि वादी का वाद खारिज किए जाने की आवश्यकता है और इसलिए विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज करने में कोई त्रुटि कारित नहीं की है । हमें विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में ऐसी कोई अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है जिसके आधार पर वर्तमान प्रथम अपील में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो ।

24. परिणामत: इस प्रथम अपील में बल न होने के कारण यह खारिज किए जाने योग्य है और एतद्द्वारा इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 523 **पंजाब-हरियाणा**

मधु चौधरी और अन्य

बनाम

राजिन्दर कुमार और एक अन्य

तारीख़ 12 मार्च, 2019

(2002 की नियमित द्वितीय अपील सं. 2190)

न्यायमूर्ति अनिल क्षेत्रपाल

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 5 – हिन्दू पुरुष और ईसाई स्त्री के बीच विवाह – विधिमान्यता – विवाह से पूर्व

ईसाई स्त्री द्वारा रीतियों और अनुष्ठानों द्वारा हिन्दू धर्म अपनाया जाना – विवाह के पश्चात् पक्षकार पति और पत्नी के रूप में साथ-साथ रहना – ऐसा विवाह विधिमान्य विवाह माना जाएगा ।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 372 – उत्तराधिकार प्रमाणपत्र के लिए आवेदन – धारा 372 के अधीन कार्यवाहियां सरसरी प्रकृति की कार्यवाहियां होती हैं – अतः किसी नियमित वाद में सक्षम न्यायालय द्वारा उत्तराधिकार के बारे में निकाला गया निष्कर्ष ऐसी कार्यवाहियों में आबद्धकर होता है ।

नियमित द्वितीय अपीलें दो वादों से उद्भूत हुई हैं जिनमें से एक निखिल कुमार चौधरी द्वारा और दूसरा स्वर्गीय श्री शिव लाल और अन्य द्वारा फाइल किया गया था । इन अपीलों में तारीख 24 अप्रैल, 1981 के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया गया है जिससे अभिकथित रूप से 1981 के सिविल वाद सं. 226 में राजिन्दर कुमार के हक में निर्णय पारित करने से सुशील कुमार के साथ अन्याय हुआ है । अपीलें और पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विवादित नहीं है कि रेखा चौधरी विवाह से पूर्व एक ईसाई थी । उसने पी. डब्ल्यू. 3 के रूप में उपस्थित होकर यह कथन किया है कि उसने स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी से विवाह करने से पूर्व हिन्दू धर्म अपना लिया था । उसने यह कथन किया है कि उसका और स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी का विवाह तारीख 2 जून, 1973 को हुआ था और उनके विवाह से एक पुत्र निखिल चौधरी उत्पन्न हुआ था । साक्ष्य में यह आया है कि जब सुशील चौधरी ने प्राध्यापक के रूप में सेवा ग्रहण की थी, उस समय वह अविवाहित (कुंवारा) था । इसके पश्चात् उसने अपने नामनिर्देशन में परिवर्तन करते हुए यह नामनिर्देशन किया कि उसके सम्पूर्ण सेवानिवृत्ति फायदे उसके पुत्र निखिल चौधरी को दिए जाएंगे । साक्ष्य में यह आया है कि रेखा चौधरी और स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी पति-पत्नी के रूप में रहते थे । इसके अतिरिक्त साक्ष्य में यह भी आया है कि पंडित जी ने विवाह की सभी रीतियां आरंभ करने से पूर्व धर्म परिवर्तन की सभी औपचारिकताएं पूरी की थीं और श्रीमती रेखा

चौधरी ने हिन्दू धर्म अपना लिया था । साक्ष्य में यह आया है कि उसने गंगा का पवित्र पानी लिया था और उसे तुलसी की पत्तियां भी दी गईं थीं और उसने धर्म परिवर्तन के संबंध में धार्मिक अनुष्ठानों के कतिपय मंत्र भी पढ़े थे । साक्ष्य में यह भी आया है कि वह अपने पति के साथ वैष्णो देवी जो कि हिन्दू धार्मिक स्थान है, गई थी और उसने एक मंदिर का भी निर्माण करवाया था । इस महत्वपूर्ण साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कि स्वर्गीय श्री सुशील कुमार चौधरी और रेखा चौधरी के बीच विवाह एक विधिमान्य विवाह नहीं था, कोई बल नहीं है । यद्यपि अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने गंभीर प्रयास किया है तथापि, वह स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी और श्रीमती रेखा चौधरी के विधिमान्य विवाह के संबंध में विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई सारभूत त्रुटि उपदर्शित नहीं कर सके हैं । उपर्युक्त निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए प्रश्न सं. 1 का उत्तर अपीलार्थियों के विरुद्ध दिया जाता है । प्रश्न सं. 2 का उत्तर भी अपीलार्थियों के विरुद्ध दिया जाता है । जहां तक प्रश्न सं. 3 का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल यह उपदर्शित नहीं कर सके हैं कि प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय किस प्रकार मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन अथवा गलत मूल्यांकन पर आधारित है । (पैरा 11, 12, 13 और 14)

जहां तक सिविल पुनरीक्षण का संबंध है, वह भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 372 के अधीन उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की मंजूरी के लिए आरंभ की गई कार्यवाहियों से उद्भूत हुआ है । उपर्युक्त मामले में जो विवाद्यक विरचित किया गया था वह रेखा चौधरी और स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी के विवाह की विधिमान्यता से संबंधित था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने उपर्युक्त सिविल पुनरीक्षण में यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त विवाह विधिमान्य विवाह नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के अधीन कार्यवाहियां सरसरी प्रकृति की कार्यवाहियां हैं और इसलिए किसी नियमित वाद में निकाला गया निष्कर्ष उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की

विधिमान्यता के संबंध में विनिश्चय करने के लिए न्यायालय पर आबद्धकर है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित विस्तृत तर्कों को दृष्टिगत करते हुए जिनकी इस न्यायालय द्वारा ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए पुष्टि की गई है, पुनरीक्षण आवेदन में विवाह की विधिमान्यता के संबंध में विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय उलटे जाने योग्य है और इसलिए अपास्त किया जाता है । साक्ष्य में यह आया है कि श्रीमती रेखा ने स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी से विवाह-विच्छेद करने के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन एक अर्जी फाइल की थी और उपर्युक्त अर्जी तारीख 22 मार्च, 1978 के निर्णय प्रदर्श ए-12 द्वारा डिक्री की गई थी । तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि निखिल चौधरी जंगम संपत्ति में 7/16 अंश का हकदार होगा जबकि शेष उत्तराधिकारी 5/12 अंश पाने के हकदार होंगे । विद्वान् काउंसेल विभिन्न वारिसों के बीच जंगम संपत्ति के विभाजन की उक्त रीति में कोई त्रुटि उपदर्शित नहीं कर सके हैं । उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए दोनों नियमित द्वितीय अपीलें तथा सिविल पुनरीक्षण खारिज किए जाते हैं । तथापि, विवाह की विधिमान्यता से संबंधित उत्तराधिकार के प्रमाणपत्र के जारी करने संबंधी कार्यवाहियों में प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्षों को अपास्त किया जाता है । (पैरा 15, 16, 17 और 18)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की नियमित द्वितीय अपील सं. 2190.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री बी. आर. गुप्ता और श्री सी. बी. गोयल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री संदीप सिंह घंगस

न्यायमूर्ति अनिल क्षेत्रपाल – इस निर्णय द्वारा 2002 की द्वितीय अपील सं. 2190 और 2688 तथा 1987 के सिविल पुनरीक्षण संख्या 2142 का निपटान किया जा रहा है ।

2. नियमित द्वितीय अपीलें दो वादों से उद्भूत हुई हैं जिनमें से एक निखिल कुमार चौधरी द्वारा और दूसरा स्वर्गीय श्री शिव लाल और अन्य द्वारा फाइल किया गया था । इन अपीलों में तारीख 24 अप्रैल, 1981 के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया गया है जिससे अभिकथित रूप से 1981 के सिविल वाद सं. 226 में राजिन्दर कुमार के हक में निर्णय पारित करने से सुशील कुमार के साथ अन्याय हुआ है ।

3. विचारण न्यायालय द्वारा दोनों वादों को समेकित करके एक ही निर्णय के द्वारा निपटाया गया था । चार प्रथम अपीलें फाइल की गईं थीं जिनका एक ही निर्णय के द्वारा निपटान किया गया था। पक्षकारों के काउंसेल इस बात के लिए सहमत हैं कि ये सभी तीनों मामले आसानी से एक ही निर्णय के द्वारा निपटाए जा सकते हैं ।

4. अपीलों को ग्रहण किए जाने के समय विधि के निम्नलिखित प्रश्न विरचित किए गए थे :-

> "(1) क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में किसी रोमन कैथोलिक (ईसाई) का किसी हिन्दू के साथ विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन विधिमान्य है ?
>
> (2) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रथम अपील न्यायालय ने रेखा और सुशील के अभिकथित विवाह को विधिमान्य रूप में सही माना है और इस न्यायालय के निर्णय प्रदर्श डी-2 को दृष्टिगत करते हुए निखिल को उनका वैधानिक पुत्र सही अभिनिर्धारित किया गया है जबकि इसी विवाद के संबंध में 1987 का सिविल पुनरीक्षण संख्या 2142 पहले से ही लंबित है ?
>
> (3) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री पक्षकारों द्वारा पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन पर आधारित हैं ?"

5. पक्षकारों के बीच की परस्पर नातेदारी वंशावली-तालिका से

समझी जा सकती है जो इस प्रकार है :-

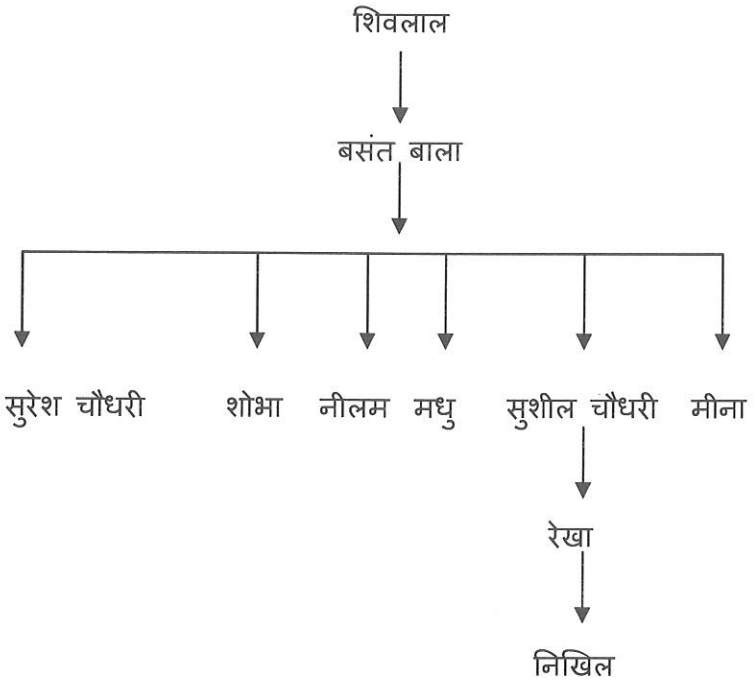

6. यद्यपि सुशील कुमार अपने मुख्तार मुसद्दी लाल जो शिव लाल का भाई था, द्वारा डिक्री से प्रभावित हुआ था जो तारीख 24 अप्रैल, 1981 को राजिन्दर कुमार पुत्र मुसद्दी लाल के हक में पारित की गई थी तथापि, राजिन्दर कुमार ने निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियों को आक्षेपित करना पसन्द नहीं किया । अत: तारीख 24 अप्रैल, 1981 की डिक्री की विधिमान्यता इस न्यायालय के समक्ष विवादग्रस्त नहीं है ।

7. वह एकमात्र विवाद्यक जिस पर काउंसेलों ने विस्तृत दलीलें दी हैं, ये हैं कि क्या सुशील चौधरी और रेखा चौधरी के बीच विवाह विधिमान्य था और क्या यह विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अनुसरण में था । यह उल्लेखनीय है कि स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी सरकारी महाविद्यालय में एक प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहा था । निखिल चौधरी के पुत्र का यह पक्षकथन है कि उसके माता-पिता, पति और पत्नी थे और उनके विवाह से तारीख 11 अगस्त, 1975 को उसका जन्म हुआ था ।

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि सुशील चौधरी और श्रीमती रेखा चौधरी के बीच विवाह एक विधिमान्य विवाह नहीं था क्योंकि इस बारे में कोई तर्कपूर्ण साक्ष्य मौजूद नहीं है कि श्रीमती रेखा चौधरी जो कि रोमन कैथोलिक (क्रिश्चियन) थी, ने विवाह संपन्न होने से पूर्व हिन्दू धर्म अपना लिया था । तथापि, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् उपर्युक्त निष्कर्ष को उलट दिया । किसी भी दशा में निखिल चौधरी सुशील चौधरी और रेखा चौधरी का पुत्र है ।

9. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय का रेखा चौधरी के संबंध में निकाला गया यह निष्कर्ष कि उसने विवाह संपन्न होने से पूर्व हिन्दू धर्म अपना लिया था, सही है । उन्होंने यह दलील दी है विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्ष सही हैं । उन्होंने यह भी दलील दी है कि इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि सुशील चौधरी और रेखा चौधरी के बीच संपन्न विवाह एक विधिक हिन्दू विवाह नहीं था ।

10. इस न्यायालय द्वारा दलीलों पर विचार किया गया और विद्वान् काउंसेलों की सहायता से निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और अभिलेख का परिशीलन किया गया ।

11. यह विवादित नहीं है कि रेखा चौधरी विवाह से पूर्व एक ईसाई थी । उसने पी. डब्ल्यू. 3 के रूप में उपस्थित होकर यह कथन किया है कि उसने स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी से विवाह करने से पूर्व हिन्दू धर्म अपना लिया था । उसने यह कथन किया है कि उसका और स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी का विवाह तारीख 2 जून, 1973 को हुआ था और उनके विवाह से एक पुत्र निखिल चौधरी उत्पन्न हुआ था । साक्ष्य में यह आया है कि जब सुशील चौधरी ने प्राध्यापक के रूप में सेवा ग्रहण की थी, उस समय वह अविवाहित (कुंवारा) था । इसके पश्चात् उसने अपने नाम-निर्देशन में परिवर्तन करते हुए यह नामनिर्देशन किया कि उसके सम्पूर्ण सेवानिवृत्ति फायदे उसके पुत्र निखिल चौधरी को दिए जाएंगे । साक्ष्य में यह आया है कि रेखा चौधरी और स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी पति-पत्नी के रूप में रहते थे । इसके अतिरिक्त साक्ष्य में यह भी आया है कि पंडित

जी ने विवाह की सभी रीतियां आरंभ करने से पूर्व धर्म परिवर्तन की सभी औपचारिकताएं पूरी की थीं और श्रीमती रेखा चौधरी ने हिन्दू धर्म अपना लिया था । साक्ष्य में यह आया है कि उसने गंगा का पवित्र पानी लिया था और उसे तुलसी की पत्तियां भी दी गई थीं और उसने धर्म परिवर्तन के संबंध में धार्मिक अनुष्ठानों के कतिपय मंत्र भी पढ़े थे । साक्ष्य में यह भी आया है कि वह अपने पति के साथ वैष्णो देवी जो कि हिन्दू धार्मिक स्थान है, गई थी और उसने एक मंदिर का भी निर्माण करवाया था ।

12. इस महत्वपूर्ण साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कि स्वर्गीय श्री सुशील कुमार चौधरी और रेखा चौधरी के बीच विवाह एक विधिमान्य विवाह नहीं था, कोई बल नहीं है ।

13. यद्यपि अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने गंभीर प्रयास किया है तथापि, वह स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी और श्रीमती रेखा चौधरी के विधिमान्य विवाह के संबंध में विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई सारभूत त्रुटि उपदर्शित नहीं कर सके हैं ।

14. उपर्युक्त निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए प्रश्न सं. 1 का उत्तर अपीलार्थियों के विरुद्ध दिया जाता है । प्रश्न सं. 2 का उत्तर भी अपीलार्थियों के विरुद्ध दिया जाता है । जहां तक प्रश्न सं. 3 का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल यह उपदर्शित नहीं कर सके हैं कि प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय किस प्रकार मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन अथवा गलत मूल्यांकन पर आधारित है ।

15. जहां तक सिविल पुनरीक्षण का संबंध है, वह भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 372 के अधीन उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की मंजूरी के लिए आरंभ की गई कार्यवाहियों से उद्भूत हुआ है । उपर्युक्त मामले में जो विवाद्यक विरचित किया गया था वह रेखा चौधरी और स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी के विवाह की विधिमान्यता से संबंधित था ।

16. विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने उपर्युक्त सिविल पुनरीक्षण

में यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त विवाह विधिमान्य विवाह नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के अधीन कार्यवाहियां सरसरी प्रकृति की कार्यवाहियां हैं और इसलिए किसी नियमित वाद में निकाला गया निष्कर्ष उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की विधिमान्यता के संबंध में विनिश्चय करने के लिए न्यायालय पर आबद्धकर है ।

17. विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित विस्तृत तर्कों को दृष्टिगत करते हुए जिनकी इस न्यायालय द्वारा ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए पुष्टि की गई है, पुनरीक्षण आवेदन में विवाह की विधिमान्यता के संबंध में विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय उलटे जाने योग्य है और इसलिए अपास्त किया जाता है । साक्ष्य में यह आया है कि श्रीमती रेखा ने स्वर्गीय श्री सुशील चौधरी से विवाह-विच्छेद करने के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन एक अर्जी फाइल की थी और उपर्युक्त अर्जी तारीख 22 मार्च, 1978 के निर्णय प्रदर्श ए-12 द्वारा डिक्री की गई थी । तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि निखिल चौधरी जंगम संपत्ति में 7/16 अंश का हकदार होगा जबकि शेष उत्तराधिकारी 5/12 अंश पाने के हकदार होंगे । विद्वान् काउंसेल विभिन्न वारिसों के बीच जंगम संपत्ति के विभाजन की उक्त रीति में कोई त्रुटि उपदर्शित नहीं कर सके हैं ।

18. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए दोनों नियमित द्वितीय अपीलें तथा सिविल पुनरीक्षण खारिज किए जाते हैं । तथापि, विवाह की विधिमान्यता से संबंधित उत्तराधिकार के प्रमाणपत्र के जारी करने संबंधी कार्यवाहियों में प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्षों को अपास्त किया जाता है ।

19. उपर्युक्त निर्णय को दृष्टिगत करते हुए सभी लंबित प्रकीर्ण आवेदन, यदि कोई हों, निपटाए जाते हैं ।

पुनरीक्षण और अपीलें खारिज की गईं ।

मह.

राजकुमार शर्मा

बनाम

श्रीमती मंजू

तारीख 24 जनवरी, 2018

(2012 की खंड न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील संख्या 3746)

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी और न्यायमूर्ति दिनेश चंद्र सोमानी

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 13(1)(i-ख) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका – पति के विरुद्ध दहेज की मांग, पिटाई और दुर्व्यवहार के आरोप – पत्नी द्वारा इन आरोपों के संबंध में किसी न्यायालय/पुलिस थाना में कोई शिकायत दर्ज न कराया जाना – इन आरोपों को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपने वैवाहिक घर के किसी नातेदार या पड़ोसी का कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष परीक्षण न कराया जाना – पति द्वारा विवाह-विच्छेद आवेदन प्रस्तुत किए जाने के पूर्व निरंतर दो वर्ष तक वैवाहिक घर न आना और वैवाहिक जीवन के दायित्वों का निर्वहन न करना – पत्नी द्वारा पति के परित्याग के दृढ़ निश्चय को दर्शाता है – पति विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-पति ने 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन पत्नी द्वारा उसके प्रति क्रूरता का व्यवहार किए जाने और उसका परित्याग किए जाने के आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा करते हुए याचिका फाइल की गई, जिसमें यह प्रकथन किया गया कि उसकी पत्नी अपने समस्त आभूषण और कपड़े लेकर अपने भाई के विवाह समारोह में भाग लेने के लिए अपने माता-पिता के घर (मायके) गई थी, किंतु वह अपने वैवाहिक घर (ससुराल) वापस नहीं आई, वह अपने माता-पिता और भाई के प्रभाव में आकर वहीं पर रह रही है, वह अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए गया किंतु उसने वापस आने से इनकार कर दिया । उसने अपने रिश्तेदारों को

भी पत्नी को समझा-बुझाकर वापस लाने के लिए भेजा, किंतु वह तब भी नहीं आई । वह तब भी नहीं आई जब पति के पिता की मृत्यु हुई और उसकी मां की दुर्घटना हुई । पत्नी बिना किसी युक्तियुक्त कारण के दो वर्ष से अधिक की अवधि से पति से अलग होकर रह रही है और इस प्रकार वह पति के साथ क्रूरता का व्यवहार कर रही है और उसने जानबूझकर अपने पति का परित्याग कर रखा है । कुटुम्ब न्यायाधीश ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि पति ने पत्नी द्वारा परित्यजन के अपने पक्षकथन को साबित नहीं किया है और पति द्वारा फाइल की गई विवाह-विच्छेद याचिका को खारिज कर दिया । इस आदेश से व्यथित होकर पति ने 1984 के कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत वर्तमान अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी-पति पर लगाए गए दहेज की मांग, पिटाई और दुर्व्यवहार के आरोप, जैसा कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा अभिकथित किया गया है कि बिना किसी कोई ब्यौरे के सामान्य प्रकृति के आरोप हैं । स्वीकृततः प्रत्यर्थी-पत्नी ने दहेज की मांग और उसकी पिटाई की घटनाओं के आरोपों के संबंध में किसी न्यायालय/पुलिस थाना में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति द्वारा अधिकथित रूप से दहेज की मांग किए जाने और उसके साथ दुर्व्यवहार के आरोपों को साबित किए जाने के संबंध में अपने वैवाहिक घर के किसी नातेदार या पड़ोसी को कुटुंब न्यायालय के समक्ष तलब कराए जाने के लिए न तो कोई अनुरोध किया और न ही परीक्षण कराया गया और न ऐसे किसी साक्ष्य को प्रस्तुत न कराए जाने/तलब न कराए जाने के लिए कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है । संपूर्ण परिस्थितियों का प्रभाव और प्रत्यर्थी-पत्नी के आचरण यह है कि उसने परित्यजन के आशय की अभिव्यक्ति दी थी । इस प्रकार, अपीलार्थी/पति द्वारा "परित्यजन" के दोनों तत्व अर्थात् (i) पृथक्करण का तथ्य और (ii) परित्यजन का आशय को सिद्ध कर दिया गया है । प्रत्यर्थी-पत्नी का आचरण वैवाहिक घर को वापस न लौटने और वैवाहिक जीवन के

दायित्वों का निर्वहन न किए जाने के संबंध में उसके दृढ़ निश्चय को अधिक दर्शाता है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए इस निष्कर्ष को अभिलिखित करने में उचित नहीं थी कि अपीलार्थी-पति ने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा परित्यजन के अपने पक्षकथन को साबित नहीं किया है और अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई विवाह के विघटन की याचिका को खारिज कर दिया है । इसलिए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय का निष्कर्ष विवाद्यक संख्या 2 के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं औरर अपास्त किए जाने योग्य हैं । अपीलार्थी-पति ने इस बात को संतोषजनक रूप से साबित किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के विघटन के प्रयोजनार्थ फाइल की गई याचिका को फाइल किए जाने के पहले निरंतर दो वर्ष की अवधि तक परित्यजन की दोषी है और वह 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1) (i-ख) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है । अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर किए जाने योग्य है । (पैरा 32, 33 और 34)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 88 :
आध्यत्म भट्टर बनाम **आध्यात्मा भट्टर श्री देवी** । 24

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की खंड न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील संख्या 3746.

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एम. एम. रंजन, वरिष्ठ अधिवक्ता, मोहित गुप्ता और दौलत शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री तेजस्वी शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दिनेश चंद्र सोमानी ने दिया ।

न्या. सोमानी – यह अपील अपीलार्थी-पति द्वारा 2007 के वैवाहिक मामला संख्या 459 में जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 2 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "कुटुंब न्यायालय" कहा गया है) के न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 25 अगस्त, 2012 को निर्णय और डिक्री के विरुद्ध 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा विवाह-विच्छेद की ईप्सा करते हुए की 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन फाइल की गई याचिका को खारिज कर दिया ।

2. संक्षेप में इस अपील का निपटारा किए जाने के लिए तात्विक तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-पति ने हिन्दू विवाह अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13 के अधीन क्रूरता और परित्याग के आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा करते हुए जिसमें यह कथन किया गया है कि अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ विवाह हिन्दू संस्कार और रीतिरिवाजों के अनुसार तारीख 28 अप्रैल, 1999 को जयपुर जिले के चोमू में संपन्न हुआ था । विवाह का रजिस्ट्रीकरण नहीं कराया गया है । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी-पति के साथ जयपुर सिटी के ब्रह्मकूप की बगीची में रहने लगी । विवाह के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी-पत्नी ने रोशन नाम के पुत्र को जन्म दिया, जो वर्तमान में 7 वर्ष 6 माह का है । अपीलार्थी-पति ने इस मामले में यह अभिवाक् किया है कि उसको विवाह के पश्चात्, जानकारी हुई कि प्रत्यर्थी-पत्नी मानसिक विक्षप्तता से पीड़ित है और वह पागलों जैसा व्यवहार करती है । अपीलार्थी-पति ने उसका उपचार कराया । वह कुछ समय के लिए ठीक भी हो गई थी परन्तु कुछ समय पश्चात्, उसने अपनी वही हरकतें फिर से शुरू कर दी । प्रत्यर्थी-पत्नी के भाई कैलाश ने अपीलार्थी से अपने पुत्र के विवाह के लिए 80,000/- रुपए का ऋण लिया था और पप्पू **उर्फ** हरि मोहन ने अपीलार्थी से अपने स्वयं के विवाह के लिए 50,000/- रुपए का ऋण लिया था । जब अपीलार्थी-पति ने ऋण की रकम के पुनर्संदाय की मांग की तो प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने भाइयों के उकसाने पर अपीलार्थी-पति के साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति

के माता-पिता पर झूठे आरोप लगाना आरंभ कर दिया, जबकि वे कोटा में रह रहे थे ।

3. अपीलार्थी-पति ने यह अभिवाक् भी किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी को दोनों पक्षों की ओर से जो आभूषण और वस्त्र दिए गए थे वह अपने पुत्र के साथ सभी आभूषण और कपड़े लेकर अपने भाई पप्पू **उर्फ** हरि मोहन के विवाह समारोह में भाग लेने अपने माता-पिता के घर गई परन्तु वह अपने वैवाहिक घर वापस नहीं आई और वह अपनी माता और भाई के प्रभाव में आकर वहीं पर रह रही है । प्रत्यर्थी-पत्नी अनुरोध के बावजूद अपने वैवाहिक घर (ससुराल) तब भी नहीं आई जब अपीलार्थी के माता की दुर्घटना हो गई थी ।

4. उसने आगे यह अभिवाक् किया है कि अपीलार्थी-पति, उसके माता-पिता और अन्य रिश्तेदारों ने प्रत्यर्थी-पत्नी को उसके माता-पिता के घर से वापस लाने के लिए बहुत से प्रयास किए किन्तु वह वापस नहीं आई । तारीख 15 जनवरी, 2006 को, स्वयं अपीलार्थी-पति, प्रत्यर्थी-पत्नी को वापस लाने के लिए अपने वैवाहिक घर (ससुराल) गया परन्तु उसने आने से इनकार कर दिया । तत्पश्चात्, अपीलार्थी-पति ने दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक याचिका फाइल की । सुलह के दौरान, प्रत्यर्थी-पत्नी ने भरणपोषण भत्ते के संदाय, जिसे लोक अदालत ने तारीख 11 सितम्बर, 2007 को अभिनिर्धारित किया था, के बावजूद, अपीलार्थी-पति के साथ रहने से इनकार कर दिया । यह अभिकथन भी किया है कि किसी युक्तियुक्त कारण के बिना, प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति को दो वर्ष से अधिक की अवधि से परित्यजन कर रखा है और उसने अपने पक्ष में विवाह के विघटन और विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने का अनुरोध किया ।

5. प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपना लिखित कथन फाइल किया । अपने लिखित कथन में, प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह-विच्छेद याचिका में अभिवाक् के रूप में अपीलार्थी के साथ विवाह संस्कार, पति और पत्नी के रूप में जयपुर में एक साथ रहने और पुत्र रोशन को जन्म देने के तथ्य को स्वीकृत किया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति द्वारा अपनी याचिका में

लगाए गए क्रूरता और परित्यजन के संबंध में विवाह को विघटित किए जाने के सभी आरोपों से इनकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने लिखित कथन में यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी-पति ने अपना बचाव करने के लिए दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन किए जाने के प्रयोजनार्थ यह याचिका फाइल की है क्योंकि उसको दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन उसके विरुद्ध कार्यवाही की आशंका थी । किन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी ने दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन कोई कार्रवाई नहीं की, इसलिए अपीलार्थी-पति ने स्वयं 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल की गई याचिका वापस ले ली ।

6. यह अभिकथन भी किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ है । प्रत्यर्थी-पत्नी के भाइयों ने अपीलार्थी-पति से कभी भी कोई ऋण नहीं लिया है । अपीलार्थी-पति क्रोधित स्वभाव का व्यक्ति है, जो छोटी बातों पर प्रत्यर्थी-पत्नी की पिटाई करता था । अपीलार्थी-पति दहेज की मांग करता था और प्रत्यर्थी-पत्नी को पीटता था और उसने, उसको द्वितीय विवाह किए जाने और अधिक दहेज पाने के प्रयोजनार्थ नवम्बर, 2003 को घर से निकाल दिया । स्वयं अपीलार्थी-पति ने प्रत्यर्थी-पत्नी का परित्यजन किया है । यह भी अभिवाक् किया है कि तारीख 15 जनवरी, 2006 को न तो अपीलार्थी-पति, प्रत्यर्थी को वापस ले जाने के लिए आया और न ही उसके रिश्तेदार उसको ले जाने के लिए आए और उसने विवाह-विच्छेद किए जाने की पति की याचिका को खारिज किए जाने का अनुरोध किया ।

7. पक्षकारों के अभिवाकों के आधार पर विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

1. क्या गैर याची-पत्नी ने विवाह संस्कार के पश्चात् याची के साथ क्रूरता का बर्ताव किया जैसा कि याचिका में अभिकथित किया गया है ?

2. क्या गैर याची-पत्नी ने किसी बिना युक्तिसंगत कारण के दो वर्ष से अधिक की अवधि से याची-पति का परित्यजन कर रखा है ?

3. अन्य कोई अनुतोष ?

8. याचिका के समर्थन में, अपीलार्थी-पति ने आवेदक साक्षी-1, राजकुमार शर्मा, आवेदक साक्षी-2, राधेश्याम, आवेदक साक्षी-3 महावीर प्रसाद की परीक्षा कराई और प्रदर्श 1 से प्रदर्श 5 के रूप में पांच दस्तावेज प्रदर्शित कराए । अपनी प्रतिरक्षा में, प्रत्यथी-पत्नी ने प्रति. सा.1, मंजू शर्मा और प्रति. सा. 2, सुगनी की परीक्षा कराई ।

9. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन और समालोचना करने के पश्चात् और दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी-पति यह साबित कर पाने में विफल रहा कि उसके साथ प्रत्यर्थी-पत्नी ने क्रूरता का व्यवहार किया और यह कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने दो वर्ष से भी अधिक की अवधि से उसका परित्यजन कर रखा था और अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की याचिका को तारीख 25 अगस्त, 2012 के आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया ।

10. अपीलार्थी-पति ने तारीख 25 अगस्त, 2012 के आक्षेपित निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर, यह अपील फाइल की है ।

11. दलीलों के आरंभ होने पर अपीलार्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री दौलत शर्मा ने ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एम. एम. रंजन की सहायता करते हुए स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि "क्रूरता" को साबित नहीं किया जैसा कि अपीलार्थी-पति ने अभिकथित किया है और उसने अपनी दलीलों को विवाह के विघटन अर्थात् परित्यजन की याचिका में केवल द्वितीय आधार तक सीमित रखा है । इस प्रकार क्रूरता के संबंध में विवाद्यक संख्या 1 पर विद्वान् कुटुंब न्यायालय के निष्कर्ष पर इस न्यायालय द्वारा विचारण अपेक्षित नहीं है और हमे केवल "परित्यजन" के संबंध में पक्षकारों के साक्ष्य और अभिवाकों का मूल्यांकन करना है ।

12. अपीलार्थी-पति के विद्वान् अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह साबित है कि वर्ष 2003 में प्रत्यर्थी-पत्नी अपने भाई के विवाह में शामिल होने के लिए अपने माता-पिता के घर गई थी । अपीलार्थी-पति भी इस

विवाह में शामिल हुआ था । तत्पश्चात् अपीलार्थी-पति अपने घर वापस लौट आया किन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी वापस नहीं आई थी । अपीलार्थी-पति 15-20 दिन पश्चात् उसे वापस लेने के लिए अपनी ससुराल गया किन्तु वह नहीं आई । अपीलार्थी-पति उसको वापस लाने के लिए कई बार ससुराल गया । अपीलार्थी-पति अपने मामा राधेश्याम, चाचा महावीर प्रसाद और विद्या प्रसाद, जीजा विनोद को भी साथ ले गया जिन्होंने प्रत्यर्थी-पत्नी को उसके माता-पिता के घर से वापस लाने के प्रयास किए किन्तु वे भी असफल रहे चूंकि उसने आने से इनकार कर दिया ।

13. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि तत्पश्चात्, अपीलार्थी-पत्नी ने जयपुर के कुटुंब न्यायालय के समक्ष हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु याचिका फाइल की । वह फिर भी अपने मायके से वापस नहीं आई, इसलिए अपीलार्थी-पति ने दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु याचिका को वापस ले लिया और विवाह के विघटन की याचिका फाइल की । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अपीलार्थी की माता की दुर्घटना हो गई थी परन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी अनुरोध करने के बावजूद भी वह अपनी ससुराल वापस नहीं आई । प्रत्यर्थी-पत्नी का आचरण अपीलार्थी-पति की और बिना उसकी सहमति के जानबूझकर उपेक्षा किए जाने का है और वह भी वैवाहिक घर के छोड़ने प्रयोजनार्थ बिना किसी युक्तियुक्त कारण के । इसलिए इस विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित है और अपीलार्थी-पति ने आक्षेपित निर्णय को अपास्त और अभिखंडित किए जाने और विवाह विघटन की याचिका मजूंर किए जाने की प्रार्थना की ।

14. इसके विपरीत प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल श्री तेजस्वी शर्मा ने अपीलार्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का विरोध किया और कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया ।

15. प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने अनुरोध किया है कि साक्ष्य के आधार पर यह साबित हो गया है कि अपीलार्थी-पति प्रत्यर्थी-

पत्नी की छोटी-छोटी बातों पर पिटाई करता था । अपीलार्थी-पति दहेज की मांग करता था और प्रत्यर्थी-पत्नी की पिटाई करता था तथा उसने नवम्बर, 2003 में उसको घर से निकाल दिया था, तब से प्रत्यर्थी-पत्नी अपने माता-पिता के घर में रह रही है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील भी दी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपने माता-पिता के घर में अपनी इच्छा से नहीं रही है बल्कि बाध्यकारी परिस्थितियों में रह रही है । यह भी साबित हो गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति की उपेक्षा और परित्यजन नहीं किया है, इसके विपरीत यह भी साबित हो गया है कि स्वयं अपीलार्थी-पति ने स्वयं ही प्रत्यर्थी-पत्नी का परित्यजन किया है और उसकी पिटाई करने के पश्चात् घर से निकाल दिया है, जो प्रत्यर्थी-पत्नी के पास अपने माता-पिता के घर में रहने का युक्तिसंगत कारण । विद्वान् काउंसेल ने विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और अपील के गुणागुण से रहित होने के कारण खारिज किए जाने का अनुरोध किया है ।

16. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की परस्पर विरोधी दलीलों पर गंभीरता से विचार किया और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया ।

17. अपीलार्थी-पति ने अपना पक्षकथन साबित करने के उद्देश्य से आवेदक साक्षी-1 के रूप में स्वयं की और आवेदक साक्षी-2 के रूप में राधे श्याम और आवेदक साक्षी-3 के रूप में महावीर प्रसाद की परीक्षा कराई ।

18. अपीलार्थी-पति राज कुमार शर्मा (आवेदक साक्षी 1) ने शपथपूर्वक कथन किया कि प्रत्यर्थी-पत्नी उसके साथ तीन वर्ष रही थी । वर्ष 2003 में, प्रत्यर्थी-पत्नी, अपीलार्थी-पति के साथ अपने भाई के विवाह में शामिल होने के लिए गई थी । दो-तीन दिन पश्चात्, साक्षी वापस लौट आया लेकिन प्रत्यर्थी-पत्नी वापस नहीं आई । 15-20 दिन पश्चात्, साक्षी अपनी ससुराल प्रत्यर्थी-पत्नी को लेने के लिए गया । साक्षी अपनी ससुराल 15-20 बार प्रत्यर्थी-पत्नी को लेने गया । प्रत्यर्थी-पत्नी ने इस साक्षी को कहा कि अपने चाचा महावीर प्रसाद, विद्या

प्रसाद और मामा घनश्याम के साथ आना । तत्पश्चात् साक्षी उनके साथ गया परन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी वापस नहीं आई । साक्षी और उसके चाचा वर्ष 2005 और 2007 में प्रत्यर्थी को अपने भतीजे के विवाह में शामिल होने हेतु लेने के लिए गए लेकिन वह नहीं लौटी । तत्पश्चात्, उसने दांपत्य अधिकारें का प्रत्यास्थापन के प्रयोजनार्थ याचिका फाइल की । फिर भी वह वापस नहीं लौटी, इस प्रकार उसने मामला वापस ले लिया । इस साक्षी ने यह भी शपथपूर्वक कथन किया कि प्रत्यर्थी-पत्नी वर्ष 2003 के पश्चात् कभी वापस नहीं आई । साक्षी ने आगे शपथपूर्वक कथन किया कि उसके पिता को वर्ष 2007 में दिल का दौरा पड़ा था और साक्षी प्रत्यर्थी को वापस लेने गया था किन्तु वह नहीं लौटी । वर्ष 2008 में साक्षी की माता की दुर्घटना हो गई थी और वह प्रत्यर्थी को वापस लेने के लिए गया लेकिन वह नहीं आई । प्रत्यर्थी पिछले सात वर्ष से पृथक् रूप से रह रही है और उसने जानबूझकर उसकी उपेक्षा की है । प्रतिपरीक्षा में, साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि प्रत्यर्थी की उसके द्वारा की गई पिटाई के कारण उसके दाहिने हाथ में क्षति हुई थी ।

19. राधे श्याम (आवेदक साक्षी 2) अपीलार्थी-पति का मामा है । इस साक्षी ने यह अभिवाक् किया कि विवाह के पश्चात्, प्रत्यर्थी लगभग 3-4 वर्ष अपनी ससुराल में रही है । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी याची के साथ अपने भाई के विवाह समारोह में गई परन्तु वह विवाह समारोह (16 का 9) के पश्चात् वापस नहीं आई । राजकुमार (याची) 5-7 दिनों के पश्चात् प्रत्यर्थी को लेने के लिए गया किन्तु वह वापस नहीं आई । यह साक्षी भी प्रत्यर्थी को वापस लाने के लिए गए, तब याची के चाचा और मामा ने प्रत्यर्थी की माता से आने के लिए कहा । तत्पश्चात्, साक्षी महावीर, विद्या प्रकाश और विनोद के साथ पुनः गया फिर भी प्रत्यर्थी वापस नहीं आई । साक्षी ने यह अभिवाक् भी किया कि अनुरोध के बावजूद, प्रत्यर्थी महावीर प्रसाद की पुत्रियों के विवाह में भी नहीं आई थी । साक्षी ने आगे यह अभिवाक् किया कि प्रत्यर्थी तब भी नहीं आई जब याची के पिता को वर्ष 2007 में दिल का दौरा पड़ा था और याची की माता की वर्ष 2008 में दुर्घटना हुई । राजकुमार (याची) ने दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन के लिए वाद फाइल किया फिर भी वह नहीं आई । साक्षी ने यह भी

अभिवाक् किया कि अब दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं । प्रतिपरीक्षा में, साक्षी ने इस बात से इनकार किया कि याची ने प्रत्यर्थी की कभी पिटाई नहीं की है । साक्षी ने स्वयं अभिवाक् किया कि उनमें से किसी ने भी इस बारे में उसको कभी नहीं बताया ।

20. महावीर प्रसाद (आवेदक साक्षी 3) याची का चाचा है, जिसने भी याची के मामले का समर्थन किया । इस साक्षी ने अधिकतर समान अभिकथन किए है और यह अभिवाक् किया है कि प्रत्यर्थी वर्ष 2003 से अपने माता-पिता के घर में रह रही है । प्रत्यर्थी अपने भाई के विवाह में शामिल होने के लिए अपने माता-पिता के घर गई थी परन्तु तत्पश्चात् वह वापस नहीं आई । साक्षी ने यह भी अभिवाक् किया कि उसके साथ राधेश्याम और विद्या प्रकाश प्रत्यर्थी को लेने गए थे लेकिन वह वापस नहीं आई । साक्षी ने यह भी अभिवाक् किया कि वह वर्ष 2005 और वर्ष 2009 में अपनी पुत्रियों के विवाह समारोह में शामिल होने के लिए प्रत्यर्थी को लेने गया किन्तु वह नहीं आई ।

21. इस साक्षी ने यह अभिवाक् भी किया कि वह प्रत्यर्थी को तब भी लेने के लिए गया था जब याची के पिता को दिल का दौरा पड़ा था लेकिन वह नहीं आई थी । प्रत्यर्थी तब भी नहीं आई जब याची की माता की दुर्घटना हुई थी । प्रत्यर्थी वर्ष 2003 से पृथक् रूप से रह रही है ।

22. इसके खंडन करते हुए, मंजू शर्मा (प्रति. सा.1), स्वयं प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया कि याची छोटी-छोटी बातों पर उसकी पिटाई करता था । याची क्रोधी प्रकृति का व्यक्ति है । याची ने एक बार उसकी पिटाई की और उसका बायां हाथ तोड़ दिया । साक्षी ने यह अभिवाक् भी किया कि याची और उसके कुटुंब के सदस्य दूसरा विवाह करने के लिए उस पर विवाह-विच्छेद हेतु दबाव डालते थे । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि याची ने अंततः वर्ष 2003 में, उसे और पुत्र रोशन को घर से बाहर निकाल दिया और तब से वह अपने माता-पिता के घर रह रही है । साक्षी ने यह भी अभिवाक् किया कि उसके याची के विरुद्ध दहेज का मामला फाइल नहीं किया । अब वह याची के साथ रहना नहीं चाहती है परन्तु वह विवाह-विच्छेद भी नहीं चाहती है । साक्षी ने

आगे यह अभिवाक् किया कि याची ने स्वयं वर्ष 2003 से बिना किसी कारण युक्तियुक्त उसका परित्यजन कर रखा है । प्रतिपरीक्षा में, इस साक्षी ने अभिकथन किया कि वह पिछले 8 वर्षों से याची से पृथक् रूप से रह रही है । इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया कि उसकी दादी सास की मृत्यु के पश्चात्, उसके चचिया ससुर जगदीश प्रसाद, महावीर प्रसाद और याची के भाई प्रेम उसको मायके से लाने के लिए आए थे । इस साक्षी ने यह स्वीकृत किया कि जब उसकी दादी सास का देहांत हुआ तब भी वह सांत्वना देने नहीं आई ।

23. सुगनी (प्रति. सा. 2) प्रत्यर्थी-पत्नी की माता है जिन्होंने प्रत्यर्थी के कथन का समर्थन किया और यह अभिवाक् किया है कि विवाह के कुछ समय पश्चात्, याची और उसके कुटुंब के सदस्यों ने प्रत्यर्थी को पीटना आरंभ कर दिया था और वे उसको तब भी पीटते थे, जब प्रत्यर्थी 8 माह की गर्भवती थी । तत्पश्चात् वे प्रत्यर्थी को उसके मायके ले आए । प्रत्यर्थी और उसका पुत्र पिछले 7-8 वर्ष से उसके साथ रह रहे हैं । साक्षी ने यह भी अभिवाक् किया कि एक बार याची प्रत्यर्थी को वापस ले जाने के लिए आया था । प्रतिपरीक्षा में, इस साक्षी ने यह अभिवाक् दिया कि उन्होंने प्रत्यर्थी को उसके वैवाहिक घर भेजने के प्रयास किए थे लेकिन याची ने प्रत्यर्थी के हाथ तोड़ने और तेजाब से जलाने की धमकी दी थी । इस साक्षी ने यह अभिवाक् भी किया कि याची के पिता, मामा और चाचा प्रत्यर्थी को वापस ले जाने के लिए आए थे परन्तु उन्होंने कहा कि वे प्रत्यर्थी की पिटाई करेंगे, इसलिए उन्होंने प्रत्यर्थी को उनके साथ नहीं भेजा ।

24. **आध्यत्म भट्टर** बनाम **आध्यात्मा भट्टर श्री देवी**[1] वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 8 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

यह खंड यह अधिकथित करता है कि परित्याग के कारण जो वैवाहिक अपराध कारित होता है वह याचिका के फाइल प्रस्तुतीकरण के

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 88.

ठीक पहले न्यूनतम दो वर्ष की अवधि जारी रहना चाहिए । इस खंड को स्पष्टीकरण के साथ पढ़ा जाना चाहिए । इस स्पष्टीकरण ने प्रत्यर्थी द्वारा याचिकाकर्ता पति या पत्नी की जानबूझकर की गई उपेक्षा को सम्मिलित करते हुए परित्यजन की परिभाषा को व्यापक बना दिया है । यह स्पष्टीकरण अभिकथित करता है कि वैवाहिक अपराध की गठित किए जाने के लिए परित्यजन के बिना किसी युक्तिसंगत कारण और याची की सहमति के बिना और उसकी इच्छा के विरुद्ध होनी चाहिए । इस स्पष्टीकरण से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि विधान-मण्डल का आशय अभिव्यक्ति को व्यापक अर्थ प्रदान करना है जिसमें विवाह के दूसरे पक्षकारों द्वारा याची की जानबूझकर की गई उपेक्षा सम्मिलित है । इसलिए, परित्यजन के अपराध के लिए, जहां तक परित्याग करने वाले पति या पत्नी से संबंध है, दो आवश्यक शर्तें पूरी होनी चाहिए अर्थात् (1) पृथक्करण का तथ्य और (2) सहवास के आशय के लिए स्थायी रूप से समाप्ति का इरादा अर्थात् परित्याग का इरादा । इसी प्रकार दो तत्व आवश्यक है जहां तक उनका संबंध पति-पत्नी के परित्यजन से है (1) सहमति का अभाव और (2) उस आचरण जिस कारणवश वैवाहिक घर छोड़ने वाले पति या पत्नी को युक्तियुक्त कारण उद्भूत हुआ और जिस कारण यथापूर्वोक्त आवश्यक कारण सृजित हुआ का अभाव । विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई याचिका के याची पर पति या पत्नी इन दोनों तत्वों के विद्यमान होने और संपूर्ण कानूनी अवधि के दौरान जारी रहने को साबित करने का भार ।

25. साक्ष्य के विश्लेषण से, यह प्रतीत होता है कि स्वयं प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् नहीं किया कि उसे याची ने गर्भावस्था के दौरान पीटा था । जबकि उसकी माता सुगनी (प्रति. सा. 2) ने अतिश्योक्तिपूर्ण अभिकथन दिया है कि प्रत्यर्थी को याची ने उसके गर्भावस्था के दौरान पीटा था । इसलिए सुगनी (प्रति. सा. 2) द्वारा दिए गए साक्ष्यों का अवलंब अन्य संपोषक साक्ष्य के बिना नहीं लिया जा सकता । इसके अतिरिक्त, उसने

अपीलार्थी के दुर्व्यवहार और पीटने की किसी कथित घटना को घटित होते हुए स्वयं नहीं देखा और वह एक अनुश्रुत साक्षी है ।

26. अपीलार्थी-पति का पक्षकथन यह है कि उसके पिता, संबंधी और स्वयं उसने प्रत्यर्थी को वैवाहिक घर वापस लाने के अनेक प्रयास किए । इस संबंध में, प्रत्यर्थी-पत्नी मंजू शर्मा (प्रति. सा. 1) ने यह अभिवाक् किया कि अपीलार्थी-पति कभी भी उसको लाने के लिए वैवाहिक घर नहीं आया । जबकि प्रत्यर्थी-पत्नी की माता सुगनी (प्रति. सा. 2) ने अभिवाक् किया है कि अपीलार्थी-पति के पिता, चाचा, मामा प्रत्यर्थी-पत्नी को उसके वैवाहिक घर ले जाने के लिए आए थे । और एक बार अपीलार्थी-पति भी आया था । अपनी प्रतिपरीक्षा में सुगनी (प्रति. सा. 2) ने यह अभिवाक् किया है कि उन्होंने प्रत्यर्थी को उसके वैवाहिक घर भेजने के लिए अनेकों प्रयत्न किए किन्तु याची (पति) ने उसका हाथ तोड़ने और एसिड से जलाने की धमकी दी थी जबकि प्रत्यर्थी-पत्नी मंजू शर्मा ने उक्त धमकियों के बारे में कोई भी कथन नहीं किया है । एक साथ रहने का आशय दर्शाने के लिए, प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह अभिकथन किया कि उसने याची (पति) से टेलीफोन के माध्यम से संपर्क करने का प्रयास किया था परन्तु याची (पति) की अपनी प्रतिपरीक्षा में ऐसा कोई सुबूत नहीं दिया गया । इस प्रकार, प्रत्यर्थी-पत्नी और उसकी माता सुगनी (प्रति. सा. 2) द्वारा दिए गए साक्ष्य के सारवान् तथ्यों में अंतर्विरोध है ।

27. 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन "अभित्यजन" के वैवाहिक अपराध को साबित करने के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक होते है :-

(i) पृथक्करण के तथ्य ; और

(ii) परित्यजन के आशय के लिए स्थायी रूप से सहवास समाप्त करने का इरादा ।

28. पक्षकारों के अभिवाकों और उनके द्वारा पेश किए गए साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी-पति ने तारीख 21 नवंबर, 2007 को

विवाह के विघटन के प्रयोजनार्थ याचिका फाइल की थी जिसमें यह कथन करते हुए कि प्रत्यर्थी-पत्नी पृथक् रुपए रह रहे हैं और उसने अपीलार्थी-पति का दो वर्ष से अधिक अवधि से परित्यजन कर रखा है । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह भी अभिवाक् किया है कि अपीलार्थी-पति ने उसको पीटा और नवंबर, 2003 में घर से बाहर निकाल दिया । अपीलार्थी-पति राजकुमार ने अभिवाक् दिया है कि प्रत्यर्थी वर्ष 2003 के पश्चात् वापस नहीं आई । राधे श्याम (आवेदक साक्षी 2) और महावीर प्रसाद (आवेदक साक्षी 3) ने अपीलार्थी के वृत्तांत की संपुष्टि की है । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह अभिकथन भी किया है कि पति ने वर्ष नवंबर, 2003 में उसे घर से निकाल दिया था और तब से वह अपने माता-पिता के घर रह रही है । इस प्रकार अपीलार्थी और प्रत्यर्थी निर्विवाद रूप से, नवंबर, 2013 से पृथक् रूप से रह रहे हैं । इसलिए, पृथक्करण के तथ्य सिद्ध हो गए हैं ।

29. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह प्रकट हो गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी वर्ष 2003 में अपने भाई के विवाह समारोह में शामिल हो होने के लिए अपने माता-पिता के घर गई थी जिसे उसकी अभिव्यक्ति या अपने पति को स्थायी रूप से त्यागने की इच्छा नहीं समझा जा सकता परन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी अपने भाई के विवाह के पश्चात्, वैवाहिक घर वापस नहीं आई, हालांकि अपीलार्थी-पति, उसके माता-पिता और संबंधियों द्वारा वापस लाने के प्रयत्न किए गए थे । इसी बीच में, अपीलार्थी-पति के पिता को हृदयघात हुआ था और अपीलार्थी-पति की माता की दुर्घटना हुई परन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी अनुरोध किए जाने और वापस लाए जाने के प्रयासों के बावजूद वैवाहिक घर वापस नहीं आई ।

30. यह भी प्रकट होता है कि इसी बीच में अपीलार्थी-पति की दादी का देहांत हो गया परन्तु प्रत्यर्थी-पत्नी सांत्वना देने के लिए भी अपने वैवाहिक घर नहीं आई ।

31. महावीर प्रसाद (आवेदक साक्षी 2) अपीलार्थी-पति का चाचा है । यह प्रतीत होता है कि इसी दौरान महावीर प्रसाद (आवेदक साक्षी 2) की

दो पुत्रियों का विवाह नवंबर, 2005 और 2009 में संपन्न हुआ । स्वयं महावीर प्रसाद (आवेदक साक्षी 2) प्रत्यर्थी-पत्नी को वैवाहिक घर लाने के लिए गए थे लेकिन वह नहीं आई । अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने पति के साथ वैवाहिक घर में रहने की इच्छा व्यक्त की हो । इसके अलावा स्वयं प्रत्यर्थी ने शपथपूर्वक यह कथन किया है कि अब वह याची के साथ नहीं रहना चाहती ।

32. अपीलार्थी-पति पर लगाए गए दहेज की मांग, पिटाई और दुर्व्यवहार के आरोप, जैसा कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा अभिकथित किया गया है कि बिना किसी कोई ब्यौरे के सामान्य प्रकृति के आरोप हैं । स्वीकृततः प्रत्यर्थी-पत्नी ने दहेज की मांग और उसकी पिटाई की घटनाओं के आरोपों के संबंध में किसी न्यायालय/पुलिस थाना में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति द्वारा अधिकथित रूप से दहेज की मांग किए जाने और उसके साथ दुर्व्यवहार के आरोपों को साबित किए जाने के संबंध में अपने वैवाहिक घर के किसी नातेदार या पड़ोसी को कुटुंब न्यायालय के समक्ष तलब कराए जाने के लिए न तो कोई अनुरोध किया और न ही परीक्षण कराया गया और न ऐसे किसी साक्ष्य को प्रस्तुत न कराए जाने/तलब न कराए जाने के लिए कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है ।

33. संपूर्ण परिस्थितियों का प्रभाव और प्रत्यर्थी-पत्नी के आचरण यह है कि उसने परित्यजन के आशय की अभिव्यक्ति दी थी । इस प्रकार, अपीलार्थी/पति द्वारा "परित्यजन" के दोनों तत्व अर्थात् (i) पृथक्करण का तथ्य और (ii) परित्यजन का आशय को सिद्ध कर दिया गया है । प्रत्यर्थी-पत्नी का आचरण वैवाहिक घर को वापस न लौटने और वैवाहिक जीवन के दायित्वों का निर्वहन न किए जाने के संबंध में उसके दृढ़ निश्चय को अधिक दर्शाता है ।

34. विद्वान् विचारण न्यायाधीश को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए इस निष्कर्ष को अभिलिखित करने

में उचित नहीं थी कि याची-पति ने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा परित्यजन के अपने पक्षकथन को साबित नहीं किया है और अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई विवाह के विघटन की याचिका को खारिज कर दिया है । इसलिए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय का निष्कर्ष विवाद्यक संख्या 2 के संबंध में निकाले गए निष्कर्ष मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं और अपास्त किए जाने योग्य हैं । अपीलार्थी-पति ने इस बात को संतोषजनक रूप से साबित किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने विवाह के विघटन के प्रयोजनार्थ फाइल की गई याचिका को फाइल किए जाने के पहले निरंतर दो वर्ष की अवधि तक परित्यजन की दोषी है और वह 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1) (i-ख) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है । अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर किए जाने योग्य है ।

35. तद्नुसार, अपील मंजूर की जाती है, जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 2 के तारीख 25 अगस्त, 2012 के आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी-पति द्वारा विवाह के विघटन के लिए 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन फाइल की गई याचिका मंजूर की जाती है और अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी के मध्य तारीख 28 अप्रैल, 1999 को अनुष्ठापित विवाह को आज से विघटित किया जाता है और अपीलार्थी-पति के पक्ष में विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश नहीं दिया जाता ।

अपील मंजूर की गई ।

महीं./शु.

(2019) 2 सि. नि. प. 549 राजस्थान

नीता दरबारी (श्रीमती)

बनाम

आलोक सक्सेना

तारीख 6 दिसंबर, 2018

(2004 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 85)

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 10 – करार का विनिर्दिष्ट अनुपालन – वादग्रस्त संपत्ति के विक्रय के बाबत करार के अंतर्गत सहमत राशि के संदाय में तत्परता – संपूर्ण राशि का संदाय स्वीकृत होना – अपीलार्थी-वादी करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री का हकदार है ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 10 – करार का विनिर्दिष्ट अनुपालन – वादग्रस्त संपत्ति का नक्शा संपत्ति की स्थिति को उजागर करता है लेकिन जहां संपत्ति का विवरण करार में अंकित हो, उस स्थिति में नक्शे पर पक्षकारों के हस्ताक्षर न होने से भी संपत्ति के करार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी-वादी ने विचारण न्यायालय के समक्ष करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद प्रस्तुत किया । वादपत्र में यह अभिकथन किया गया कि वादग्रस्त संपत्ति के बाबत तारीख 24 अप्रैल, 1997 को एक करार निष्पादित हुआ था और इस करार के आधार पर अपीलार्थी-प्रतिवादी ने प्रत्यर्थी-वादी को वादग्रस्त संपत्ति 3,90,000/- रुपए में बेचना स्वीकार किया था और उक्त राशि का संदाय बैंक पे-आर्डर द्वारा कर दिया गया था जिसका उल्लेख करार में भी किया गया । वादपत्र के अनुसार वादग्रस्त संपत्ति का विक्रय-विलेख निर्धारित दो माह की अवधि में निष्पादित कर दिया जाना था जिसमें अपीलार्थी-प्रतिवादी के विफल रहने के कारण वाद फाइल किया गया जिसे जयपुर के अपर जिला न्यायाधीश, क्रम 5 ने निर्णय और डिक्री तारीख 3 दिसंबर, 2003 द्वारा डिक्री कर दिया गया । इस निर्णय

से व्यथित होकर अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वर्तमान अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय की राय में नक्शा मात्र संपत्ति का स्पष्टीकरण/स्थिति उजागर करता है, लेकिन जहां संपत्ति का विवरण एग्रीमेंट में अंकित हो एवं एग्रीमेंट के निष्पादन के क्रम में पक्षों की स्वीकृति हो, उस स्थिति में नक्शे पर पक्षकारों के हस्ताक्षर नहीं होने से भी संबंधित संपत्ति के एग्रीमेंट पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है । अत: नक्शे के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा लिया गया तर्क स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । एग्रीमेंट की राशि की अदायगी के क्रम में तैयार व तत्परता (ready and willingness) रहने बाबत योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गए तर्कों पर मनन करने पर प्रकट होता है कि एग्रीमेंट के तहत विक्रय राशि 3,90,000/- रुपए होना बताया गया है एवं संपूर्ण राशि का भुगतान भी होना स्वीकृत है । दूसरी ओर वादग्रस्त संपत्ति की विक्रय राशि 39,00,000/- रुपए होने के तथ्य को अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा अपनी साक्ष्य से प्रमाणित नहीं करने की स्थिति में, संपूर्ण राशि के भुगतान के क्रम में तैयार व तत्परता के क्रम में प्रत्यर्थी-वादी के स्तर पर ऐसा कोई आधार/भार शेष नहीं रहता है, जिससे प्रत्यर्थी-वादी को प्रमाणित करना आवश्यक हो । उपरोक्तानुसार विवेचन की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायसंगत होने से उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अत: प्रस्तुत अपील खारिज किए जाने योग्य है । (पैरा 18, 19, 20 और 21)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2004 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 85.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के आदेश 41, नियम 1 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मनीष शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जी. पी. शर्मा

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी – अधीनस्थ न्यायालय, अपर जिला न्यायाधीश, क्रम 5 जयपुर नगर, जयपुर द्वारा दीवानी संख्या-84/2002

में पारित निर्णय एवं डिक्री तारीख 3 दिसंबर, 2003, जिसके तहत प्रत्यर्थी-वादी का वाद बाबत संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना डिक्री किया गया, से व्यथित होकर अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. इस न्यायालय की समकक्ष पीठ के आदेश तारीख 27 जनवरी, 2004 के तहत यह अपील विचारार्थ ग्रहण की जा चुकी है । दोनों पक्षों को सुना गया ।

3. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व डिक्री विधि के प्रावधानों के प्रतिकूल है । उनका कथन रहा है कि अधीनस्थ न्यायालय ने मूल रूप से अपीलार्थी-प्रतिवादी की साक्ष्य बंद होने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी-वादी का वाद साक्ष्य से प्रमाणित हुए बिना डिक्री किया है । उनका यह भी कथन रहा कि अपीलार्थी-प्रतिवादी की साक्ष्य बंद होने के बावजूद, प्रत्यर्थी-वादी को अपने पैरों पर खड़े होकर समुचित साक्ष्य से अपना प्रकरण साबित करना आवश्यक है । उनका यह भी कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय में प्रस्तुत एग्रीमेंट के साथ संलग्न नक्शे पर अपीलार्थी-प्रतिवादी के हस्ताक्षर नहीं हैं एवं नक्शे को सम्पत्ति का भाग नहीं माना जा सकता । उनका यह भी कथन रहा है कि पक्षों के मध्य 39 लाख रुपए में सौदा हुआ है, जिसके क्रम में अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा अपने जवाबदावे में अभिवचन भी लिया गया है, लेकिन अधीनस्थ न्यायालय ने संपत्ति का सौदा मात्र 3,90,000/- रुपए में होना मानकर सम्पूर्ण राशि के भुगतान के आधार पर वाद डिक्री किया है । उनके अनुसार एग्रीमेंट की राशि के क्रम में अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से उठाए गए ऐतराज के खंडन में प्रत्यर्थी-वादी द्वारा कोई विश्वनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गई है ।

4. बहस के दौरान उनका यह भी तर्क रहा कि एग्रीमेंट के समय बैंक से लोन लिए जाने के कारण वादग्रस्त संपत्ति बैंक के पास गिरवी/बंधक (mortgage) थी तथा बंधक संपत्ति के बाबत न तो एग्रीमेंट किया जा सकता एवं न ही संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना के क्रम में डिक्री पारित की जा सकती है । उनका कथन रहा कि अपीलार्थी-

प्रतिवादी को साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं किया गया है । अपीलार्थी-प्रतिवादी घटना के समय अधीनस्थ न्यायालय के क्षेत्राधिकार में नहीं रहकर, अन्य स्थान पर निवास कर रही थी । अत: अपील स्वीकार की जाकर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय व डिक्री अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई ।

5. इन तर्कों का खण्डन करते हुए योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी-वादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय ने दोनों पक्षों के अभिवचनों के आधार पर, प्रकरण में कुल चार विवाद्यक कायम किए हैं एवं चारों विवाद्यकों के क्रम में अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा उठाए गए ऐतराज कवर होते हैं तथा अधीनस्थ न्यायालय ने प्रत्येक विवाद्यक पर अपना विस्तृत विवेचन व कारण अंकित करते हुए निर्णय पारित किया है, जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होने से अपील खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

6. समस्त तथ्यों पर विचार किया गया । प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार प्रत्यर्थी-वादी ने अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना के क्रम में वाद प्रस्तुत कर वादपत्र में वर्णित सम्पत्ति के क्रम में तारीख 24 अप्रैल, 1997 को इकरारनामा निष्पादित होना एवं इकरारनामा में अंकित संपत्ति अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रत्यर्थी-वादी को 3,90,000/- रुपए में बेचना स्वीकार करते हुए उक्त राशि का भुगतान अपीलार्थी-प्रतिवादी को जरिए बैंक पे आर्डर कर दिया जाना अंकित किया । वादपत्र के अनुसार विक्रय पत्र निर्धारित दो माह की अवधि में निष्पादित नहीं कराए जाने पर वाद प्रस्तुत कर संविदा की अनुपालना कराए जाने की प्रार्थना की गई ।

7. वादपत्र में अंकित अभिवचनों के खंडन में अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से जवाबदावा प्रस्तुत कर मूल रूप से पक्षों के मध्य 39 लाख रुपए में सौदा होना एवं विक्रय मूल्य अदा करने का समय एक वर्ष तय होना बताया । एग्रीमेंट के साथ संलग्न नक्शे में किसी भी पक्षकार के हस्ताक्षर नहीं होना बताया एवं एग्रीमेंट अपूर्ण होना बताकर दावा खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

8. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पक्षकारान के अभिवचनों के आधार पर निम्न विवाद्यक विचरित किए :-

1. आया प्रतिवादी ने अपने मकान नं. 114 गोम्स डिफेंस कालोनी का वादपत्र के चरण क्रम 1 में वर्णित एक भाग वादी को 3,90,000/- रुपए में विक्रय किया व विक्रय राशि प्राप्त कर विक्रय अनुबंध निष्पादित किया व दो माह में रजिस्ट्री करना तय किया ।

2. आया वादी को प्रतिवादी की ओर से विक्रय अनुबंध के तहत वादग्रस्त परिसर का कब्जा संभला दिया ।

3. आया वादी विक्रय अनुबंध तारीख 24 अप्रैल, 1997 के तहत अपना पार्ट पूरा करने के लिए सदैव इच्छुक व तत्पर रहा है एवं प्रतिवादीगण बावजूद नोटिस रजिस्ट्री नहीं करवा रही है ।

4. अनुतोष ।

9. साक्ष्य वादी में दो गवाहान को परीक्षित करवाकर कुल 10 (दस्तावेजात) प्रदर्शित करवाए गए । जबकि प्रतिवादी की ओर से कोई साक्ष्य पेश नहीं हुई ।

10. बहस के दौरान योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत समस्त तर्कों के क्रम में सर्वप्रथम अपीलार्थी-प्रतिवादी को साक्ष्य हेतु पर्याप्त अवसर नहीं दिए जाने के तर्क पर विचार करते हैं, यदि उक्त तर्क/ऐतराज अपीलार्थी-प्रतिवादी प्रमाणित करने में सफल रहता है तो निश्चित रूप से अन्य तर्कों पर विवेचन की आवश्यकता शेष नहीं रहती है, बल्कि अन्य तर्कों पर उसी की रोशनी में विचार कर निष्कर्ष दिया जा सकता है ।

11. इस क्रम में जहां तक अधीनस्थ न्यायालय की आदेशिकाओं का प्रश्न है, अधीनस्थ न्यायालय की पत्रावली के अवलोकन से प्रकट होता है कि वादी साक्ष्य तारीख 12 सितंबर, 2003 को समाप्त करने के पश्चात् प्रकरण वादी की तरदीदी साक्ष्य में सुरक्षित रखते हुए प्रतिवादी साक्ष्य हेतु नियत किया गया । तत्पश्चात् आगामी पेशी तारीख 6

अक्तूबर, 2003 को प्रतिवादी की ओर से गवाह उपस्थित नहीं होने पर साक्ष्य हेतु तारीख 28 अक्तूबर, 2003 को तारीख नियत की गई । तारीख 28 अक्तूबर, 2003 को भी प्रतिवादी साक्ष्य उपस्थित नहीं होने पर अंतिम अवसर साक्ष्य हेतु दिया जाकर पत्रावली तारीख 19 नवंबर, 2003 को रखी गई । तारीख 19 नवंबर, 2003 को प्रतिवादी गवाह उपस्थित नहीं हुए तथा न ही प्रतिवादी की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु किसी प्रकार के अवसर की मांग की गई, जबकि आदेशिका के अवलोकन से प्रकट होता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा साक्ष्य बंद करने के निवेदन पर ही प्रतिवादी साक्ष्य बंद की गई ।

12. इस न्यायालय की राय में जहां न्यायालय द्वारा प्रतिवादी को साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु तीन अवसर दिए जाने के बावजूद भी प्रतिवादी की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए जाने एवं तत्पश्चात् अंतिम बार जब न्यायालय द्वारा प्रतिवादी की साक्ष्य बंद की गई, तब भी प्रतिवादी द्वारा किसी प्रकार की साक्ष्य पेश करने हेतु अवसर नहीं चाहने एवं स्वयं साक्ष्य बंद किए जाने के निवेदन पर साक्ष्य बंद की गई, ऐसी स्थिति में इस न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं, वे उपरोक्त विवेचन की रोशनी में स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं ।

13. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा एग्रीमेंट के निष्पादन के क्रम में जो तर्क उठाए गए हैं, उन तर्कों से यह तथ्य स्वीकृत है कि अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा एग्रीमेंट प्रत्यर्थी-वादी के पक्ष में निष्पादित किया गया है । एग्रीमेंटर के निष्पादन को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 1 के तहत किए गए विवेचन से भी प्रमाणित माना गया है, जिसके खंडन में किसी प्रकार की साक्ष्य अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से अधीनस्थ न्यायालय में प्रस्तुत नहीं की गई है ।

14. जहां तक एग्रीमेंट में अंकित राशि का प्रश्न है, इस क्रम में एग्रीमेंट के अवलोकन से प्रकट होता है कि 3,90,000/- रुपए की राशि न केवल अंकों में लिखी गई है, बल्कि शब्दों में भी उसका उल्लेख है ।

दूसरी ओर प्रदर्श-3 रसीद से भी यह स्पष्ट है कि राशि प्राप्त करने के बाबत 3,90,000/- रुपए का शब्दों व अंकों में हवाला है एवं किसी प्रकार की राशि शेष नहीं होना बताया गया है । अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से एग्रीमेंट की राशि के बाबत जो ऐतराज जवाबदावा में लिया गया है, वह प्रथमदृष्ट्या वादी के दस्तावेजात की रोशनी में स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । फिर भी अपीलार्थी-प्रतिवादी का यदि इस क्रम में वास्तव में कोई बचाव होता तो निश्चित रूप से अपीलार्थी-प्रतिवादी अधीनस्थ न्यायालय में साक्ष्य हेतु अवश्य उपस्थित होता, लेकिन दस्तावेजी साक्ष्य के खंडन में मौखिक साक्ष्य भी अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत नहीं करने पर, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा एग्रीमेंट की राशि 3,90,000/- रुपए मानकर निर्णय पारित किया गया है, जिसमें कोई त्रुटि नहीं है ।

15. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से मूल रूप से एग्रीमेंट निष्पादन के समय वादग्रस्त संपत्ति बैंक से लोन लिए जाने के कारण, बैंक में बंधक/गिरवी होने एवं इस क्रम में संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना के क्रम में डिक्री पारित किए जाने को चुनौती दी गई है ।

16. इस क्रम में विचार किया गया । पत्रावली के अवलोकन से प्रकट होता है कि स्वीकृत रूप से संपत्ति पर बैंक से लोन लिए जाने एवं संपत्ति बैंक में बंधक रखे जाने के बाबत तथ्य एग्रीमेंट के समय ही उजागर हो चुका था तथा यह तथ्य एग्रीमेंट की रूह से भी स्पष्ट है कि बैंक की ऋण राशि का भुगतान होने के पश्चात् आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण होने की स्थिति में विक्रय पत्र निष्पादित होना है । इस क्रम में पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय के पूर्व ही बैंक की ऋण राशि का भुगतान किया जा चुका था । ऐसी स्थिति में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना का दावा डिक्री किए जाने के समय वादग्रस्त संपत्ति पर मालिकाना हक न तो बैंक के पास था एवं न ही बैंक की कोई ऋण राशि बकाया थी ।

17. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी ने एग्रीमेंटर के साथ संलग्न नक्शे पर हस्ताक्षर के बाबत भी ऐतराज उठाया है । नक्शा एग्रीमेंट का भाग होने के क्रम में अधीनस्थ न्यायालय में गवाह परीक्षित हुआ है तथा

गवाह ने नक्शे पर ए से बी हस्ताक्षर होने के बात जो तथ्य प्रकट किया है, उसके साथ-साथ संपत्ति का विवरण भी एग्रीमेंट में अंकित है ।

18. इस न्यायालय की राय में नक्शा मात्र संपत्ति का स्पष्टीकरण/स्थिति उजागर करता है, लेकिन जहां संपत्ति का विवरण एग्रीमेंट में अंकित हो एवं एग्रीमेंट के निष्पादन के क्रम में पक्षों की स्वीकृति हो, उस स्थिति में नक्शे पर पक्षकारों के हस्ताक्षर नहीं होने से भी संबंधित संपत्ति के एग्रीमेंट पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है । अत: नक्शे के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा लिया गया तर्क स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

19. एग्रीमेंट की राशि की अदायगी के क्रम में तैयार व तत्परता रहने बाबत योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गए तर्कों पर मनन करने पर प्रकट होता है कि एग्रीमेंट के तहत विक्रय राशि 3,90,000/- रुपए होना बताया गया है एवं संपूर्ण राशि का भुगतान भी होना स्वीकृत है । दूसरी ओर वादग्रस्त संपत्ति की विक्रय राशि 39,00,000/- रुपए होने के तथ्य को अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा अपनी साक्ष्य से प्रमाणित नहीं करने की स्थिति में, संपूर्ण राशि के भुगतान के क्रम में तैयार व तत्परता (ready and willingness) के क्रम में प्रत्यर्थी-वादी के स्तर पर ऐसा कोई आधार/भार शेष नहीं रहता है, जिससे प्रत्यर्थी-वादी को प्रमाणित करना आवश्यक हो ।

20. उपरोक्तानुसार विवेचन की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायसंगत होने से उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अत: प्रस्तुत अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

21. परिणामत: अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल प्रथम अपील खारिज की जाती है ।

22. यह निर्णय आज तारीख 6 दिसम्बर, 2018 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(i) के तहत भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या-1, तारीख 2 जनवरी, 1999 एवं राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के तहत हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने

के परिणामस्वरूप मूल निर्णय हिन्दी भाषा में लिखाया गया । राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के आदेश 397/03.10.2018 के तहत अनुवादक से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करवाकर प्रमाणित प्रति भी जारी की जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही./शु.

(2019) 2 सि. नि. प. 557 **हिमाचल प्रदेश**

राम तरी और अन्य

बनाम

रतन चन्द और अन्य

तारीख़ 11 अक्तूबर, 2018

(2015 की नियमित द्वितीय अपील सं. 167)

न्यायमूर्ति धर्म चन्द चौधरी

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि – सह-अंशदार – सह-अंशदार द्वारा दूसरे सह-अंशदार से भिन्न व्यक्ति को भूमि का विक्रय – सह-अंशधारी द्वारा अग्र-क्रय के अधिकार का दावा – विधिमान्यता – चूंकि सह-अंशदार ने अपने सह-अंशदार और सह-खातेदार को भूमि विक्रीत करने का कोई प्रस्ताव नहीं किया अत: वादी-सह-अंशदार का व्यतिक्रम न होने और अधिमानी अधिकार होने के कारण वह वाद-भूमि के प्रतिफल का संदाय करके भूमि का क़ब्जा पाने का अधिकारी है ।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 – धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि का विक्रय – सह-अंशदार द्वारा सह-अंशदार और सह-खातेदार से भिन्न व्यक्ति को विक्रय – वादी-सह-अंशदार द्वारा अग्र-क्रय का दावा – वादी द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश न की जानी – प्रभाव – चूंकि प्रतिवादी द्वारा अपने

हक़ में विक्रय विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया गया है – इसके अतिरिक्त वादी के काउंसेल का यह दायित्व था कि वह विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश करे – अत: काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए वादी को अनुतोष देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

वादी और प्रतिवादी सं. 2 के पिता सरन की मृत्यु होने पर उन्हें वाद भूमि समान भागों में विरासत में प्राप्त हुई थी । वादी के भाई प्रीतम अर्थात् प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख़ 28 मई, 1996 (जिसे ग़लती से वादपत्र में 28 मई, 1995 के रूप में लिखा गया है) के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में निर्मित आबादी सहित अपने भाग का हस्तांतरण कर दिया था । वादी ने संयुक्त स्वामी होने और वाद भूमि में कृषि-संबंधी हित रखने तथा इस संपत्ति में अधिमानी अधिकार रखने के आधार पर तथा प्रतिवादी सं. 1 के हक में इसके विक्रय से व्यथित होकर निर्धारित विक्रय प्रतिफल के संदाय पर इसे क्रय करने की इच्छा के साथ क़ब्जे के लिए अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद फाइल किया कि वह अभी भी भूमि पर काबिज है और उसने इस पर आबादी निर्मित कर ली है । प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद का विरोध किया कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और न ही वादी को सुने जाने का अधिकार है और न ही वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है । विवादित भूमि संयुक्त भूमि नहीं थी और इसके अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 2 को उन्हें अपने भाग को बेचने के सभी अधिकार प्राप्त हैं । यह अपील 2012 की सिविल अपील सं. 19 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, (द्वितीय), ऊना द्वारा तारीख़ 31 जुलाई, 2013 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपील खारिज करते हुए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), ऊना जिला, ऊना द्वारा तारीख़ 1 सितंबर, 2007 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधायी आशय यह है कि प्रतिवादी सं. 2 का यह दायित्व था कि वह वादी को प्रश्नगत भूमि में अपने भाग को विक्रीत

करने के लिए अपना आशय व्यक्त करते हुए उससे क्रय करने के लिए यदि वह हितबद्ध हो, कहता । अत: वादी यह दावा करने में पूर्णतया न्यायोचित है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि प्रतिवादी सं. 2 प्रश्नगत भूमि प्रतिवादी सं. 1 को विक्रीत करने का आशय रखता है । यह सही है कि प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख द्वारा भूमि विक्रीत कर दी है । यद्यपि विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश नहीं किया गया है तथापि, इस बारे में कोई इनकार नहीं किया गया है और इसके बजाय प्रतिवादी सं. 1 ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने प्रश्नगत भूमि तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा भूमि क्रय की है । अत: इसके प्रतिकूल निष्कर्ष कि साक्ष्य में विक्रय विलेख को पेश किए बिना इसके रद्दकरण का आदेश नहीं किया जा सकता, विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 13)

अब न्यायालय विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर होता है । तथ्यों के आधार पर संविवाद अधिक गंभीर नहीं है क्योंकि वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पूर्वजों से वाद भूमि विरासत में मिली है । दोनों निचले न्यायालयों ने इसे सहदायिकी संपत्ति होना अभिनिर्धारित किया है । संपत्ति वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पिता सरन की मृत्यु होने पर विरासत में मिली है । मामले के इस पहलू के संबंध में कोई भी विवाद नहीं है । वादपत्र के पैरा 4 में इन प्रकथनों को कि प्रतिवादी सं. 1 ने वाद भूमि तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा 15,000/- रुपए के बदले क्रय की है, लिखित कथन के पैरा 4 में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं नकारा गया है । अत: प्रतिवादी सं. 1 की इस संबंध में खामोशी उसके स्वीकृति के बराबर है जिसका यह अर्थ है कि उसने वाद भूमि 15,000/- रुपए की धनराशि के बदले प्रतिवादी सं. 2 से क्रय की थी । प्रतिवादी सं. 1 की स्वयं की संस्वीकृति को दृष्टिगत करते हुए दोनों निचले न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि विक्रय विलेख अभिलेख पर न होने के कारण इसे रद्द नहीं किया जा सकता और चूंकि इसके निष्पादन के बारे में कोई विवाद नहीं है इसलिए विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश किए जाने की आवश्यकता नहीं थी । अन्यथा भी यह विद्वान्

काउंसेल की जिम्मेदारी थी कि वह इसे साक्ष्य में पेश करते । अत: वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए, यदि कोई हो, वादी को नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता । अत: मामले के तथ्यों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गलत मूल्यांकन और गलत निर्वचन किया गया है और परिणामत: दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष दूषित हैं और इसलिए विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न का भी तद्नुसार उत्तर दिया जाता है । उपर्युक्त सभी कारणों से आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधित: और तथ्यत: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अत: इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । परिणामत: वाद डिक्री किया जाता है और वादी के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह इस प्रयोजन के लिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने पर सक्षम न्यायालय द्वारा यथा सहमत अथवा निर्धारित विक्रय-प्रतिफल का संदाय करने पर अपने अधिमानी अधिकार के प्रयोग द्वारा वाद भूमि का कब्जा पाने का हकदार है । जहां तक प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में वाद भूमि के संबंध में तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 का संबंध है, अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है और इसलिए अभिखंडित किया जाता है । तथापि, मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में पक्षकारों को अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करने का निदेश किया जाता है । (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 2 एस. सी. सी. 202 (एच. पी.) : **रोशन लाल** बनाम **प्रीतम सिंह** ;	3, 11, 12, 13
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 555 = (1999) 1 एस. सी. सी. 292 : **वैज नाथ और अन्य** बनाम **गुरम्मा और एक अन्य** ।	11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की नियमित द्वितीय अपील सं. 167.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री अमित जमवाल और अजय शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री शांति स्वरूप

न्यायमूर्ति धर्म चन्द चौधरी – यह अपील 2012 की सिविल अपील सं. 19 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, (द्वितीय), ऊना द्वारा तारीख़ 31 जुलाई, 2013 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), ऊना जिला ऊना द्वारा अपील खारिज करते हुए तारीख़ 1 सितंबर, 2007 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है ।

2. जब यह अपील तारीख़ 26 नवंबर, 2015 को ग्रहण किए जाने के लिए/सुनवाई के लिए सूचीबद्ध की गई थी तब निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था :-

> "अपीलार्थी-वादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि एक समान मामला अर्थात् 2012 की नियमित द्वितीय अपील सं. 258, रोशन लाल **बनाम** प्रीतम सिंह, (2018) 2 एस. सी. सी. 202 (एच. पी.) जिसे इस न्यायालय की समन्वय-पीठ द्वारा वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है और जिसमें विधि का समान प्रश्न अन्तर्वलित है, वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष निपटान के लिए लंबित है । मामला वृहत्तर न्यायपीठ के लिए निर्दिष्ट विधि के प्रश्न का विनिश्चय किए जाने के पश्चात् सूचीबद्ध किया जाए ।"

3. अब इस न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ ने **रोशन लाल** बनाम **प्रीतम सिंह**[1] वाले मामले में निर्दिष्ट विधि के प्रश्न को तारीख़ 1 मार्च, 2018 के निर्णय द्वारा विनिश्चित कर दिया है ।

4. जहां तक मामले की तथ्यात्मक स्थिति का संबंध है, अपीलार्थी-

---

[1] (2018) 2 एस. सी. सी. 202 (एच. पी.).

वादी ने 6 मरला जो आई.के.-19 एम. एल. एस. माप भूमि का 1/6 भाग है, माप की वाद-भूमि के बारे में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 के अधीन अधिमानी अधिकार के जरिए कब्जे के लिए वाद फाइल किया था । खेवट सं. 806, खतौनी सं. 1920 में खसरा सं. 23143, 2322, 2324 सम्मिलित हैं, खसरा सं. 2313 के ऊपर दो खरपोश कक्ष हैं । यह संपत्ति (जिसे आगे संक्षेप में 'वाद भूमि' कहा गया है) ग्राम खार, तहसील और जिला ऊना में स्थित है । प्रतिवादियों को 15,000/- रुपए विक्रय प्रतिफल के रूप में संदाय करके 1/2 भाग की मांग की गई है ।

5. वादी और प्रतिवादी सं. 2 के पिता सरन की मृत्यु होने पर उन्हें वाद भूमि समान भागों में विरासत में प्राप्त हुई थी । वादी के भाई प्रीतम अर्थात् प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख़ 28 मई, 1996 (जिसे ग़लती से वादपत्र में 28 मई, 1995 के रूप में लिखा गया है) के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में निर्मित आबादी सहित अपने भाग का हस्तांतरण कर दिया था । वादी ने संयुक्त स्वामी होने और वाद भूमि में कृषि-संबंधी हित रखने तथा इस संपत्ति में अधिमानी अधिकार रखने के आधार पर तथा प्रतिवादी सं. 1 के हक में इसके विक्रय से व्यथित होकर निर्धारित विक्रय प्रतिफल के संदाय पर इसे क्रय करने की इच्छा के साथ क़ब्जे के लिए अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद फाइल किया कि वह अभी भी भूमि पर काबिज है और उसने इस पर आबादी निर्मित कर ली है ।

6. प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद का विरोध किया कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और न ही वादी को सुने जाने का अधिकार है और न ही वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है । विवादित भूमि संयुक्त भूमि नहीं थी और इसके अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 2 को उन्हें अपने भाग को बेचने के सभी अधिकार प्राप्त हैं ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

(1) क्या वादी को वाद संपत्ति को अर्जित करने के लिए और यथा अभिकथित क़ब्जा प्राप्त करने के लिए अधिमानी अधिकार प्राप्त है ? ओ. पी. पी.

(2) क्या वर्तमान प्ररूप में वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ? ओ. पी. डी.

(3) क्या वादी को वर्तमान वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है ? ओ. पी. डी.

(4) क्या वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है ? ओ. पी. डी.

(5) क्या वादी अपने कार्य और आचरण द्वारा यह वाद फाइल करने से विबद्ध है ? ओ. पी. डी.

(6) अनुतोष ।

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पूर्ण विचारण करने और दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् विवाद्यक सं. 1 का उत्तर देते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि वादी ने यह उपदर्शित करने वाला कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि उसने प्रतिवादी सं. 2 को उसका भाग क्रय करने के लिए कोई प्रस्ताव किया था तथापि, प्रतिवादी सं. 2 ने संपत्ति उसे विक्रीत करने से इनकार कर दिया । अत: विवाद्यक सं. 1 का वादी के विरुद्ध उत्तर दिया गया जबकि शेष विवाद्यकों का प्रतिवादियों के विरुद्ध उत्तर दिया गया । अन्तत: वाद खारिज किया गया था । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की ।

9. आक्षेपित निर्णय और डिक्री की वैधता और विधिमान्यता को विभिन्न आधारों पर प्रश्नगत किया गया है तथापि, मुख्यतया इस आधार पर प्रश्नगत किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का इसके सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन नहीं किया गया है क्योंकि दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के अनुसार वाद भूमि संयुक्त हिन्दू सहदायिकी संपत्ति के लिए स्थापित थी । इसका केवल एक छोटा भाग इस दस्तावेज में बरानी के रूप में उपदर्शित किया गया है जबकि शेष भूमि

कृषि भूमि के रूप में उपदर्शित की गई है और इसलिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंध पूर्णतया लागू होते हैं । ये निष्कर्ष कि वाद भूमि कृषि भूमि है इसलिए अधिनियम की धारा 22 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंध लागू नहीं होते हैं, अवैध और तथ्यात्मक परिस्थिति के अनुकूल नहीं कहे जा सकते क्योंकि वाद भूमि के ऊपर सन्निर्मित-आबादी भी मौजूद है । इन निष्कर्षों को कि विक्रय विलेख सं. 628 की प्रति के अभाव में सामान्यतया उसके संबंध में घोषणा अकृत और शून्य है और वादी के ऊपर आबद्धकर नहीं है, मामूली रूप से नहीं लिया जा सकता क्योंकि अपीलार्थी-वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल के लिए यह आवश्यक था कि वह साक्ष्य में इसे पेश करें । उन्हें इस दोष के कारण जैसाकि विद्वान् काउंसेल से संबद्ध किया गया है, नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता । अपीलार्थी-वादी को वाद भूमि में सह-भागीदार होने के नाते भूमि क्रय करने का अधिमानी अधिकार प्राप्त है । इन निष्कर्षों को भी कि वादी ने प्रतिवादी सं. 2 के अंश की भूमि को क्रय करने के लिए प्रस्ताव नहीं किया, अवैध और त्रुटिपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि अपीलार्थी-वादी के अनुसार ऐसी कोई विधिक अपेक्षा नहीं है और प्रतिवादी सं. 2 ने भी यह प्रकट नहीं किया है वह प्रतिवादी सं. 1 को या किसी अन्य व्यक्ति को वाद भूमि को विक्रीत करना चाहता था । यदि उसके द्वारा ऐसा कोई आशय प्रकट किया जाता तो वादी निश्चित रूप से इसे क्रय करने के लिए अपना प्रस्ताव पेश करता ।

10. यह अपील विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई है :-

1. क्या अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन और विधि और तथ्यों के गलत मूल्यांकन और गलत निर्वचन के आधार पर मुख्य अपील में आक्षेपाधीन निर्णय और डिक्री अनुचित और दूषित होने के कारण विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

2. क्या निष्कर्ष रूप में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की

धारा 22 के अधीन उल्लिखित उपबंध विधिक रूप से और तथ्यात्मक रूप से कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

11. आरंभत: इस न्यायालय द्वारा **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश करना वांछनीय है । इस निर्णय में अभिव्यक्त मतानुसार अधिनियम की धारा 22 के अधीन उल्लिखित 'संपत्ति' पद में कृषि भूमि सहित सभी प्रकार की संपत्तियां सम्मिलित हैं । इस न्यायालय द्वारा मामले में अपनाए गए मत का उच्चतम न्यायालय द्वारा **वैज नाथ और अन्य** बनाम **गुरम्मा और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय से समर्थन होता है । इस न्यायालय द्वारा **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत नीचे उद्धृत किया जाता है :-

> "हम विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा मामले में अभिव्यक्त इस मत से पूर्णतया सहमत हैं कि 'संपत्ति' पद में कृषि भूमि सहित सभी प्रकार की संपत्तियां सम्मिलित हैं और इस मत का उच्चतम न्यायालय द्वारा **वैज नाथ** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से समर्थन होता है । इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने संपत्ति पर हिन्दू स्त्रियों के अधिकार अधिनियम, 1937 के उपबंधों पर विचार किया था जिसमें 'संपत्ति' शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है जो तथ्यत: उस स्थिति के समान ही है जिस कानून पर हम इस मामले में विचार कर रहे हैं । यह उल्लेखनीय है कि स्त्रियों से संबंधित विधियां न केवल कठिनाइयों को दूर करने के लिए अधिनियमित की गई हैं अपितु स्त्रियों और विधवाओं को कतिपय अधिकार प्रदान करने के लिए भी अधिनियमित की गई हैं ।
>
> अत: अधिनियम की धारा 22 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों का माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थापित उपर्युक्त विधिक सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए निर्वचन किया जाना चाहिए और समझा जाना चाहिए । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 में ऐसा कुछ उल्लिखित नहीं है जो 'कृषि भूमि' पर इसके

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 555 = (1999) 1 एस. सी. सी. 292.

प्रवर्तन को प्रतिषिद्ध करे और इस संबंध में 'बंजर क़दीम' और 'गैर-मुमकिन' (जो वर्तमान मुकदमे में विवाद की विषयवस्तु है) सहित अन्य किसी प्रकार की भूमि के मामले में भी इसके प्रवर्तन को प्रतिषिद्ध नहीं करती । तथ्यत: अधिनियम की धारा 22 में उल्लिखित 'जंगम संपत्ति' पद में 'कृषि भूमि' सहित सभी प्रकार की भूमियां आती हैं ।"

12. **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में धारा 22 के निगमन द्वारा विधि निर्माताओं ने इसकी व्याप्ति और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार स्पष्ट किया है :-

"अत: कतिपय मामलों में अन्य वारिसों को संपत्ति अर्जित करने के लिए अधिनियम की धारा 22 के अधीन यथा परिकल्पित वारिस (वारिसों) को अधिमानी अधिकार प्रदत्त करने के पीछे आशय यह है कि संपदा के खंडकरण को रोकने के एकमात्र उद्देश्य के साथ कुटुम्बीय कारबार तथा संपदा में अजनबियों के प्रवेश को रोका जाए । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के आरंभ के पश्चात् यदि अनुसूची के वर्ग I में विनिर्दिष्ट दो या अधिक वारिसों को न्यागत किसी निर्वसीयती द्वारा चलाए जा रहे कारबार अथवा किसी जंगम संपत्ति में हित को यदि ऐसा कोई वारिस संपत्ति में अपने हित या कारबार को अंतरित करने का प्रस्ताव करता या करती है तो अन्य वारिसों को प्रस्तावित अंतरण में ऐसे हित को उपार्जित करने के लिए अधिमानी अधिकार प्राप्त होगा । ऐसे हित के उपार्जन के लिए विचारणा या तो ऐसे दो वारिसों के बीच परस्पर सहमति द्वारा हो सकती है अथवा ऐसी किसी सहमति के अभाव में हो सकती है, और तब मामले का विनिश्चय अधिनियम की धारा 22 के अधीन फाइल किए जाने वाले किसी आवेदन पर न्यायालय द्वारा किया जाएगा । यदि अधिनियम की धारा 22 के प्रवर्तन को 'कृषि भूमि' के मामले में विवर्जित कर दिया जाए तो इसमें उल्लिखित ऐसे लाभकारी उपबंधों का सम्पूर्ण प्रयोजन ही विफल हो जाएगा ।

जैसाकि उपरोक्त पैरा में मेरे भ्राता माननीय न्यायमूर्ति करोल द्वारा उल्लेख किया गया है, 'कृषि भूमि' को अधिनियम की धारा 22 के लागू होने के संबंध में दो भिन्न-भिन्न मत हैं । अधिनियम

की धारा 22(1) केवल जंगम संपत्तियों का और कारबार का निर्देश करती है । हमारे सुविचारित मतानुसार 'जंगम संपत्ति' पद पूर्ण रूप से विस्तृत है जिसमें कृषि भूमि (भूमियां) सम्मिलित हैं और इस विषय में अन्य कोई भूमि जिसमें 'बंजर क़दीम' और 'गैर-मुमकिन' भूमियां सम्मिलित हैं, वर्तमान मुकदारी में विवाद की विषयवस्तु हैं ।

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है इसके पीछे उद्देश्य अत्यंत महत्वपूर्ण है अर्थात् जोतों के खंडकरण को रोकना और किसी निर्वसीयती द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई जंगम संपत्ति और कारबार में अपरिचितों के प्रवेश को रोकना है और इन सबके ऊपर स्वर्ग में बैठे हुए निर्वसीयती की आत्मा को यह शांति प्रदान करना है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी उसके द्वारा छोड़ी गई संपदा/कारबार में किसी तीसरे व्यक्ति अथवा अपरिचित की प्रविष्टि को अनुज्ञात नहीं करेंगे ।"

13. **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्णय में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित ये निष्कर्ष कि अपीलार्थी-वादी ने अपने भाई प्रतिवादी सं. 2 के भाग की सीमा तक भूमि को क्रय करने के लिए इस कारण प्रस्ताव नहीं किया कि पूर्वोक्त निर्णय में यह उल्लेख किया गया है कि कोई निष्ठावान सह-अंशधारी कभी-कभी प्रश्नगत संपत्ति में अपने भाग को विक्रीत करने के लिए अन्य सह-भागीदार को अपना आशय प्रकट नहीं करता । अत: विधायी आशय यह है कि यह प्रतिवादी सं. 2 का यह दायित्व था कि वह वादी को प्रश्नगत भूमि में अपने भाग को विक्रीत करने के लिए अपना आशय व्यक्त करते हुए उससे क्रय करने के लिए यदि वह हितबद्ध हो, कहता । अत: वादी यह दावा करने में पूर्णतया न्यायोचित है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि प्रतिवादी सं. 2 प्रश्नगत भूमि प्रतिवादी सं. 1 को विक्रीत करने का आशय रखता है । यह सही है कि प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख द्वारा भूमि विक्रीत कर दी है । यद्यपि विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश नहीं किया गया है तथापि, इस बारे में कोई इनकार नहीं किया गया है और इसके बजाय प्रतिवादी सं. 1 ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने प्रश्नगत भूमि तारीख 28 मई,

1996 के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा भूमि क्रय की है । अत: इसके प्रतिकूल निष्कर्ष कि साक्ष्य में विक्रय विलेख को पेश किए बिना इसके रद्दकरण का आदेश नहीं किया जा सकता, विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय उस स्थिति के बारे में उल्लेख करता है जब भूमि पहले ही विक्रीत कर दी गई हो और विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत हो गया हो क्योंकि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पूर्व में पूर्ण किए गए विक्रय संव्यवहार को पुन: खोला जा सकता है, निस्संदेह विक्रय प्रतिफल के संदाय पर चाहे वह परस्पर सहमति के आधार पर हो अथवा बाजार में विद्यमान भूमि की दरों पर । अत: इस अपील में निर्धारण के लिए यथा उद्भूत विधि के दूसरे सारभूत प्रश्न का तद्नुसार उत्तर दिया जाता है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि दोनों ही निचले न्यायालयों ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन उल्लिखित उपबंधों पर इसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है और तद्द्वारा यथा अभिलिखित निष्कर्ष दूषित हैं ।

14. अब हम विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं । तथ्यों के आधार पर संविवाद अधिक गंभीर नहीं है क्योंकि वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पूर्वजों से वाद भूमि विरासत में मिली है । दोनों निचले न्यायालयों ने इसे सहदायिकी संपत्ति होना अभिनिर्धारित किया है । संपत्ति वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पिता सरन की मृत्यु होने पर विरासत में मिली है । मामले के इस पहलू के संबंध में कोई भी विवाद नहीं है । वादपत्र के पैरा 4 में इन प्रकथनों को कि प्रतिवादी सं. 1 ने वाद भूमि तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा 15,000/- रुपए के बदले क्रय की है, लिखित कथन के पैरा 4 में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं नकारा गया है । अत: प्रतिवादी सं. 1 की इस संबंध में खामोशी उसके स्वीकृति के बराबर है जिसका यह अर्थ है कि उसने वाद भूमि 15,000/- रुपए की धनराशि के बदले प्रतिवादी सं. 2 से क्रय की थी । प्रतिवादी सं. 1 की स्वयं की संस्वीकृति को दृष्टिगत करते हुए दोनों निचले न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि विक्रय विलेख अभिलेख पर न होने के कारण इसे रद्द नहीं किया जा सकता और चूंकि इसके

निष्पादन के बारे में कोई विवाद नहीं है इसलिए विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश किए जाने की आवश्यकता नहीं थी । अन्यथा भी यह विद्वान् काउंसेल की जिम्मेदारी थी कि वह इसे साक्ष्य में पेश करते । अत: वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए, यदि कोई हो, वादी को नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता । अत: मामले के तथ्यों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गलत मूल्यांकन और गलत निर्वचन किया गया है और परिणामत: दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष दूषित हैं और इसलिए विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न का भी तद्नुसार उत्तर दिया जाता है ।

15. उपर्युक्त सभी कारणों से आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधित: और तथ्यत: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अत: इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । परिणामत: वाद डिक्री किया जाता है और वादी के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह इस प्रयोजन के लिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने पर सक्षम न्यायालय द्वारा यथा सहमत अथवा निर्धारित विक्रय-प्रतिफल का संदाय करने पर अपने अधिमानी अधिकार के प्रयोग द्वारा वाद भूमि का कब्जा पाने का हकदार है । जहां तक प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में वाद भूमि के संबंध में तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 का संबंध है, अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है और इसलिए अभिखंडित किया जाता है । तथापि, मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में पक्षकारों को अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करने का निदेश किया जाता है ।

16. तद्नुसार अपील मंजूर करते हुए इसका निपटान किया जाता है और इसके साथ ही साथ लंबित आवेदनों, यदि कोई हों, को भी निपटाया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 570 हैदराबाद

गांदला लक्ष्मी (श्रीमती) और अन्य

बनाम

श्रीमती जी. अशव्वा और अन्य

तारीख़ 20 नवंबर, 2018

(2018 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 5793)

न्यायमूर्ति डी. वी. वी. एस. सौम्याजुलू

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 8, नियम 9 – वादी द्वारा हक की घोषणा और कब्जे के परिदान के लिए वाद – लिखित कथन में संपत्ति की अदला-बदली की कहानी को प्रथम बार उठाया जाना – वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल करने के लिए अनुज्ञा हेतु आवेदन फाइल किया जाना – खारिजी – यदि प्रतिवादियों द्वारा पेश की गई संपत्ति की अदला-बदली की कहानी सही पायी जाती है तो वादी को नुकसान पहुंच सकता है – अत: वादी प्रत्युत्तर फाइल करने का हकदार है ।

यह पुनरीक्षण आवेदन मुख्य कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, कामरेड्डी द्वारा 2015 के मूल वाद सं. 5 में फाइल किए गए 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 312 में पारित उस आदेश को प्रश्नगत करते हुए फाइल किया गया है जिसके द्वारा प्रतिवादी सं. 1, 3 और 4 द्वारा लिखित कथनों के जवाब में प्रत्युत्तर फाइल करने के लिए अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया गया है । निचले न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि आवेदन में इस बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं किया गया है कि प्रत्युत्तर फाइल किए जाने की क्या आवश्यकता है । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि लिखित कथनों में ऐसा कोई नया आधार उल्लिखित नहीं किया गया है जिससे कि प्रत्युत्तर फाइल करने की आवश्यकता हो । अत: न्यायालय ने प्रत्युत्तर फाइल करने के अनुरोध को नामंजूर कर दिया । इस आदेश को प्रश्नगत करते

हुए वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया है । पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वाद हक की घोषणा के लिए और खाली कब्जे के परिदान के लिए फाइल किया गया था । यह विनिर्दिष्ट अभिकथन किया गया है कि द्वितीय और तृतीय प्रतिवादी का पिता और प्रथम प्रतिवादी का पति ग्राम सरपंच है और उसने ग्राम पंचायत अभिलेखों में हेर-फेर और स्थल पर अतिचार किया है । इसके जवाब में विभिन्न अभिकथनों के साथ यह प्रकथन करते हुए एक लिखित कथन फाइल किया गया था कि प्रथम वादी के पति और प्रथम प्रतिवादी के पति के बीच संपत्ति की अदला-बदली की गई थी । संपत्ति की इस अदला-बदली के आधार पर प्रतिवादी संपत्ति में अपने अधिकारों का दावा कर रहे हैं । चूंकि संपत्ति की अदला-बदली का विवाद्यक लिखित कथनों में प्रथम बार उठाया गया है इसलिए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उन्हें प्रत्युत्तर फाइल करना है और इसलिए उन्होंने 2015 का अंतरिम आवेदन सं. 312 फाइल किया जिसमें उन्होंने लिखित कथनों के विरुद्ध प्रत्युत्तर फाइल करने के लिए न्यायालय से अनुज्ञा मांगी । निचले न्यायालय द्वारा इस आधार पर आवेदन खारिज कर दिया गया कि कोई आधार नहीं बनता है । आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय का ध्यान फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 3 की ओर दिलाते हुए यह दलील दी है कि इसमें स्पष्ट रूप से यह प्रकथन किया गया है कि अदला-बदली की कहानी सृजित की गई है और आधार-रहित है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि पैरा 6 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि लिखित कथन में मिथ्या और आधार-रहित कथन किए गए हैं । विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान प्रत्युत्तर में जो फाइल किए जाने के लिए प्रस्तावित है, उल्लिखित सामग्री की ओर भी दिलाया है जिसमें स्पष्ट रूप से यह प्रकथन किया गया है कि स्थावर संपत्ति की अभिकथित अदला-बदली कभी भी नहीं हुई थी और अदला-बदली की संपूर्ण कहानी मिथ्या है । प्रस्तावित प्रत्युत्तर में यह भी विनिर्दिष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य मौजूद नहीं है जो अदला-

बदली की कहानी का समर्थन करता हो और इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । आवेदकों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि फाइल किए गए शपथपत्र और प्रस्तावित प्रत्युत्तर दोनों में ही अतिरिक्त अभिवचन करने की आवश्यकता स्पष्टतया उपदर्शित होती है । अत: उन्होंने उस आधार को प्रश्नगत किया है जिस पर आदेश पारित किया गया है । इस न्यायालय के मतानुसार उपर्युक्त निर्णय इस मामले के तथ्यों को पूर्ण रूप से लागू होता है । यदि अदला-बदली की कहानी जो प्रतिवादियों द्वारा बताई गई है, सही पायी जाती है तो वादियों को नुकसान हो सकता है । अत: इस न्यायालय का यह मत है कि वादी इस अभिवचन को प्रश्नगत करने के हकदार हैं जो उनके मामले को पूर्णतया नकार सकता है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि इस विशिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रत्युत्तर फाइल करना आवश्यक है । अत: यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि मुख्य कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, कामरेड्डी द्वारा 2015 के मूल वाद सं. 5 में फाइल किए गए 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 312 में पारित आदेश सही नहीं है और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य है । तद्नुसार सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है और निचले न्यायालय को प्रत्युत्तर प्राप्त करने और इस आदेश में किए गए संप्रेक्षण से किसी भी प्रकार से प्रभावित हुए बिना आगे विचारण करने का निदेश दिया जाता है । (पैरा 4, 5, 6, 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 1304 = (2014) 4 एस. सी. सी. 196 : **प्रतिमा चौधरी** बनाम **कल्पना मुखर्जी और एक अन्य** ;	6
[2004]	2004 (5) आंध्र एल. डी. 561 : **टी. लक्ष्मण** बनाम **जी. लक्ष्मीकांत रेड्डी** ।	6

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2018 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 5793.

आवेदकों की ओर से श्री के. रवि महेन्द्र

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति डी. वी. वी. एस. सौम्याजुलू – यह पुनरीक्षण आवेदन मुख्य कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, कामरेड्डी द्वारा 2015 के मूल वाद सं. 5 में फाइल किए गए 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 312 में पारित उस आदेश को प्रश्नगत करते हुए फाइल किया गया है जिसके द्वारा प्रतिवादी सं. 1, 3 और 4 द्वारा लिखित कथनों के जवाब में प्रत्युत्तर फाइल करने के लिए अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया गया है ।

2. निचले न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि आवेदन में इस बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं किया गया है कि प्रत्युत्तर फाइल किए जाने की क्या आवश्यकता है । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि लिखित कथनों में ऐसा कोई नया आधार उल्लिखित नहीं किया गया है जिससे कि प्रत्युत्तर फाइल करने की आवश्यकता हो । अत: न्यायालय ने प्रत्युत्तर फाइल करने के अनुरोध को नामंजूर कर दिया । इस आदेश को प्रश्नगत करते हुए वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया है ।

3. इस न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को सूचना जारी करने का आदेश पारित किया । आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने प्रत्यर्थियों के लिए व्यक्तिगत रूप से सूचनाएं प्राप्त कीं और 2018 के यू. एस. आर. सं. 95191 के साथ ज्ञापन फाइल किया । विद्वान् काउंसेल ने आवेदकों द्वारा डाक विभाग से प्राप्त पत्र भी फाइल किए जिनसे यह उपदर्शित होता है कि सभी प्रत्यर्थियों पर सूचनाओं की तामील कर दी गई है । प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है । अत: इस मामले की सुनवाई की जा रही है ।

4. आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वाद हक की

घोषणा के लिए और खाली कब्जे के परिदान के लिए फाइल किया गया था । यह विनिर्दिष्ट अभिकथन किया गया है कि द्वितीय और तृतीय प्रतिवादी का पिता और प्रथम प्रतिवादी का पति ग्राम सरपंच है और उसने ग्राम पंचायत अभिलेखों में हेर-फेर और स्थल पर अतिचार किया है । इसके जवाब में विभिन्न अभिकथनों के साथ यह प्रकथन करते हुए एक लिखित कथन फाइल किया गया था कि प्रथम वादी के पति और प्रथम प्रतिवादी के पति के बीच संपत्ति की अदला-बदली की गई थी । संपत्ति की इस अदला-बदली के आधार पर प्रतिवादी संपत्ति में अपने अधिकारों का दावा कर रहे हैं ।

5. चूंकि संपत्ति की अदला-बदली का विवाद्यक लिखित कथनों में प्रथम बार उठाया गया है इसलिए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उन्हें प्रत्युत्तर फाइल करना है और इसलिए उन्होंने 2015 का अंतरिम आवेदन सं. 312 फाइल किया जिसमें उन्होंने लिखित कथनों के विरुद्ध प्रत्युत्तर फाइल करने के लिए न्यायालय से अनुज्ञा मांगी । निचले न्यायालय द्वारा इस आधार पर आवेदन खारिज कर दिया गया कि कोई आधार नहीं बनता है ।

6. आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय का ध्यान फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 3 की ओर दिलाते हुए यह दलील दी है कि इसमें स्पष्ट रूप से यह प्रकथन किया गया है कि अदला-बदली की कहानी सृजित की गई है और आधार-रहित है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि पैरा 6 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि लिखित कथन में मिथ्या और आधार-रहित कथन किए गए हैं । विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान प्रत्युत्तर में जो फाइल किए जाने के लिए प्रस्तावित है, उल्लिखित सामग्री की ओर भी दिलाया है जिसमें स्पष्ट रूप से यह प्रकथन किया गया है कि स्थावर संपत्ति की अभिकथित अदला-बदली कभी भी नहीं हुई थी और अदला-बदली की संपूर्ण कहानी मिथ्या है । प्रस्तावित प्रत्युत्तर में यह भी विनिर्दिष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य मौजूद नहीं है जो अदला-बदली की कहानी का समर्थन करता हो और इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । आवेदकों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी

गई है कि फाइल किए गए शपथपत्र और प्रस्तावित प्रत्युत्तर दोनों में ही अतिरिक्त अभिवचन करने की आवश्यकता स्पष्टतया उपदर्शित होती है । अत: उन्होंने उस आधार को प्रश्नगत किया है जिस पर आदेश पारित किया गया है । आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **प्रतिमा चौधरी** बनाम **कल्पना मुखर्जी और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि अभिवचन तभी पूर्ण माने जाएंगे जब अपीलार्थी/वादी प्रति-शपथपत्र फाइल कर दे । इसके अतिरिक्त इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **टी. लक्ष्मण** बनाम **जी. लक्ष्मीकांत रेड्डी**[2] वाले मामले के विनिश्चय में यह स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्युत्तर का फाइल करना अधिकार संबंधी मामला नहीं है तथापि, जहां फाइल किए गए लिखित कथन में किए गए प्रकथन वादी के पक्षकथन के आधार को प्रभावित करते हों अथवा वादी के वाद को नकारते हों वहां वादी प्रत्युत्तर फाइल करने का हकदार होगा । यहां उक्त निर्णय का पैरा 8 उद्धृत किया जा रहा है :-

> "पश्चात्वर्ती अभिवचनों को अनुज्ञात करने की आवश्यकता इस आधारभूत सिद्धांत से उद्भूत होती है कि कार्यवाही का कोई पक्षकार तब तक साक्ष्य पेश नहीं कर सकता कि जब तक कि अभिवचनों में इस संबंध में कोई आधार अधिकथित न किया गया हो । सामान्य अनुक्रम में वादी को वादपत्र की अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए साक्ष्य पेश करने हेतु अनुज्ञात किया जाएगा; और प्रतिवादी को लिखित कथन की अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा । तथापि, जहां किसी वादपत्र की अन्तर्वस्तु से इनकार करने के सिवाय प्रतिवादी ने कतिपय अतिरिक्त अभिवचन किए हों वहां वादी को इस पर अपना जवाब देने के लिए आवश्यकता उत्पन्न होगी । जहां प्रतिवादी द्वारा अभिवाक् किए गए अतिरिक्त तथ्य इस प्रकार के हों जो वादी के कथन को झूठा बताते हों अथवा उसके द्वारा मांगे गए अनुतोष से इनकार करते हों

---

[1] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 1304 = (2014) 4 एस. सी. सी. 196.

[2] 2004 (5) आंध्र एल. डी. 561.

वहां वादी को इसके संबंध में अपना कथन पेश करने का अधिकार दिया जाना चाहिए । ऐसी कोई सुविधा वादी को वादपत्र में संशोधन करने के लिए अनुज्ञात करके नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इस तथ्य से वे परिस्थितियां जिनके अधीन अभिवचन संशोधित किए जा सकते हैं, पूर्णतया भिन्न होंगी । चूंकि अतिरिक्त तथ्यों के जवाब में वादी का कथन जिसके बारे में प्रतिवादी द्वारा अभिवचन किए गए हैं, वादपत्र में अभिवचनों का भाग गठित नहीं करते इसलिए वादी ऐसे पहलुओं पर साक्ष्य पेश करने से असमर्थ हो जाएगा और इस सीमा तक न्यायनिर्णयन अपूर्ण रहेगा ।"

7. इस न्यायालय के मतानुसार उपर्युक्त निर्णय इस मामले के तथ्यों को पूर्ण रूप से लागू होता है । यदि अदला-बदली की कहानी जो प्रतिवादियों द्वारा बताई गई है, सही पायी जाती है तो वादियों को नुकसान हो सकता है । अत: इस न्यायालय का यह मत है कि वादी इस अभिवचन को प्रश्नगत करने के हकदार हैं जो उनके मामले को पूर्णतया नकार सकता है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि इस विशिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रत्युत्तर फाइल करना आवश्यक है । अत: यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि मुख्य कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, कामरेड्डी द्वारा 2015 के मूल वाद सं. 5 में फाइल किए गए 2015 के अंतरिम आवेदन सं. 312 में पारित आदेश सही नहीं है और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य है ।

8. तद्नुसार सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है और निचले न्यायालय को प्रत्युत्तर प्राप्त करने और इस आदेश में किए गए संप्रेक्षण से किसी भी प्रकार से प्रभावित हुए बिना आगे विचारण करने का निदेश दिया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । परिणामत: लंबित अंतरिम आवेदनों को, यदि कोई हों, बंद किया जाता है ।

आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

संसद् के अधिनियम

मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम, 1961

(1961 का अधिनियम संख्यांक 27)[1]

[20 मई, 1961]

मोटर परिवहन कर्मकारों के कल्याण का उपबन्ध करने और उनकी काम की परिस्थितियों का विनियमन करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बारहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार, प्रारंभ और लागू होना – (1) यह अधिनियम मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम, 1961 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार [2]*** सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह 1962 के मार्च के 31वें दिन के पश्चात् की न होने वाली उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जिसे केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे, और विभिन्न राज्यों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी :

[3][परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य में केन्द्रीय श्रम विधि (जम्मू-कश्मीर पर विस्तारण) अधिनियम, 1970 (1970 का 51) के प्रारम्भ पर प्रवृत्त होगा ।]

---

[1] 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा दादरा और नागर हवेली पर ; 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा पांडिचेरी पर और 1963 के विनियम सं. 11 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा गोवा, दमण और दीव पर इस अधिनियम का विस्तार किया गया ।

[2] 1970 के अधिनियम सं. 51 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1-9-1971 से) "जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1970 के अधिनियम सं. 51 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1-9-1971 से) जोड़ा गया ।

(4) यह पांच या अधिक मोटर परिवहन कर्मकारों को नियोजित करने वाले हर मोटर परिवहन उपक्रम को लागू होता है :

परन्तु राज्य सरकार, ऐसा करने के अपने आशय की कम से कम दो मास की सूचना देने के पश्चात् शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों को पांच से कम मोटर परिवहन कर्मकारों को नियोजित करने वाले किसी भी मोटर परिवहन उपक्रम को लागू कर सकेगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "कुमार" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अपना [1][चौदहवां] वर्ष पूरा कर लिया है, किन्तु अपना अठारहवां वर्ष पूरा नहीं किया है ;

(ख) "वयस्थ" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अपना अठारहवां वर्ष पूरा कर लिया है ;

(ग) "बालक" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अपना [1][चौदहवां] वर्ष पूरा नहीं किया है ;

(घ) "दिन" से मध्यरात्रि को आरम्भ होने वाली चौबीस घंटों की कालावधि अभिप्रेत है :

परन्तु जहां कि मोटर परिवहन कर्मकार का कर्तव्य-काल मध्यरात्रि से पहले आरम्भ होता है किन्तु मध्यरात्रि के पश्चात् तक चलता है वहां उसके लिए आगामी दिन उस समय से जब ऐसा कर्तव्य-काल समाप्त होता है, आरम्भ होने वाली चौबीस घंटों की कालावधि समझा जाएगा और मध्यरात्रि के पश्चात् जितने घंटे उसने काम किया है उनकी गणना पूर्व दिन में की जाएगी ;

(ङ) "नियोजक" से किसी मोटर परिवहन उपक्रम के सम्बन्ध में वह व्यक्ति या प्राधिकारी अभिप्रेत है, जिसका मोटर परिवहन

---

[1] 1986 के अधिनियम सं. 61 की धारा 26 द्वारा "पंद्रहवां" शब्द के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

उपक्रम के कार्यकलाप पर अन्तिम नियंत्रण है, और जहां कि उक्त कार्यकलाप किसी अन्य व्यक्ति को, चाहे वह प्रबन्धक, प्रबन्ध निदेशक, प्रबन्ध-अभिकर्ता या किसी भी अन्य नाम से पुकारा जाए, न्यस्त किए गए हों, वहां ऐसा अन्य व्यक्ति अभिप्रेत है ;

(च) "काम के घंटे" से वह समय अभिप्रेत है, जिसके दौरान मोटर परिवहन कर्मकार की सेवाएं, नियोजक या उसकी सेवाओं का दावा करने के हकदार किसी अन्य व्यक्ति के आज्ञाधीन हों, और इसके अन्तर्गत निम्नलिखित आते हैं :–

(i) परिवहन यान के चालन-काल के दौरान किए गए काम में बिताया गया समय,

(ii) समनुषंगी काम में बिताया गया समय, तथा

(iii) मार्गान्तों पर पंद्रह मिनट से कम की हाजिरी मात्र की कालावधियां ।

स्पष्टीकरण – इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए –

(1) "चालन-काल" से कार्य-दिवस के संबंध में वह समय अभिप्रेत है जो उस क्षण से लेकर जब कार्य-दिवस के आरम्भ में परिवहन यान काम करना आरम्भ करता है उस क्षण तक का है जब परिवहन यान कार्य-दिवस के अन्त में काम बन्द करता है, और उसमें से ऐसा समय अपवर्जित है जिसके दौरान परिवहन यान का चलना उस कालावधि के लिए रुका रहता है जो ऐसी अवधि से अधिक हो जो विहित की जाए और जिस कालावधि के दौरान वे व्यक्ति जो यान चलाते हैं या उस परिवहन यान के संसंग में कोई अन्य काम करते हैं, अपना समय अपनी इच्छानुसार व्यतीत करने को स्वतन्त्र रहते हैं या समनुषंगी काम में लगे रहते हैं ;

(2) "समनुषंगी काम" से परिवहन यान, उसके यात्रियों या उसके भार के संसंग में ऐसा काम अभिप्रेत है, जो परिवहन यान के चालन-काल के बाहर किया जाता है और

जिसके अन्तर्गत विशिष्टतः निम्नलिखित आते हैं –

(i) लेखाओं के, नगदी जमा कराने के रजिस्टरों पर हस्ताक्षर करने के, सेवा-पत्र सौंपने के और टिकटों की जांच के संसंग में काम और इसी प्रकार का अन्य काम ;

(ii) परिवहन यान को अपने हाथ में लेना और गराज में रखना ;

(iii) उस स्थान में, जहां व्यक्ति काम पर आने के हस्ताक्षर करता है, उस स्थान तक यात्रा करना जहां वह परिवहन यान अपने हाथ में लेता है और उस स्थान से, जहां वह परिवहन यान को छोड़ता है, उस स्थान तक यात्रा करना जहां वह काम पर से चले जाने के हस्ताक्षर करता है ;

(iv) परिवहन यान के अनुरक्षण और मरम्मत के संसंग में काम ; तथा

(v) परिवहन यान पर लदाई और इससे उतराई ;

(3) "हाजिरी मात्र की कालावधि" से वह कालावधि अभिप्रेत है जिसके दौरान कोई व्यक्ति अपने पद स्थान पर केवल इसलिए रहता है कि सम्भावित बुलावों का अनुपालन करे या कर्तव्य सूची में नियत किए गए समय पर कार्य पुनः प्रारम्भ करे ;

(छ) "मोटर परिवहन उपक्रम" से वह मोटर परिवहन उपक्रम अभिप्रेत है, जो सड़क द्वारा यात्रियों या माल, या दोनों का भाड़े या इनाम के लिए वहन करने में लगा हुआ है और इसके अन्तर्गत प्राइवेट वाहक आता है ;

(ज) "मोटर कर्मकार" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी परिवहन यान पर वृत्तिक हैसियत में काम करने के लिए या ऐसे परिवहन यान के आगमन, प्रस्थान और उस पर लदाई या उससे

उतराई के संसंग में कर्तव्य करने के लिए, चाहे मजदूरी पर या मजदूरी के बिना, सीधे या किसी अभिकरण के माध्यम से, मोटर परिवहन उपक्रम में नियोजित है और इसके अन्तर्गत ड्राइवर, कन्डक्टर, क्लीनर, स्टेशन कर्मचारिवृन्द, लाइन जांच कर्मचारिवृन्द बुकिंग क्लर्क, रोकड़ क्लर्क, डिपो क्लर्क, टाइमकीपर, चौकीदार या परिचर आता है, किन्तु धारा 8 को छोड़कर इसके अन्तर्गत निम्नलिखित नहीं आते –

(i) ऐसा कोई व्यक्ति जो कारखाना अधिनियम, 1948 (1948 का 63) में यथापरिभाषित कारखाने में नियोजित है ;

(ii) ऐसा कोई व्यक्ति जिसे दुकानों या वाणिज्यिक स्थापनों में नियोजित व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाली किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबन्ध लागू होते हैं ;

(झ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ञ) "अर्हित चिकित्सा-व्यवसायी" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो भारतीय चिकित्सा उपाधि अधिनियम, 1916 (1916 का 7) की अनुसूची में विनिर्दिष्ट या उस अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिसूचित या भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 (1956 का 102) की अनुसूचियों में विनिर्दिष्ट किसी प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त प्रमाणपत्र रखता है और किसी प्रान्तीय या राज्य चिकित्सा परिषद् अधिनियम के अधीन अनुदत्त प्रमाणपत्र रखने वाला व्यक्ति इसके अन्तर्गत आता है ;

(ट) "विस्तृति" से किसी दिन कर्तव्य-काल के प्रारम्भ और उसी दिन के कर्तव्य-काल के पर्यवसान के बीच की कालावधि अभिप्रेत है ;

(ठ) "मजदूरी" का वही अर्थ है जो मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) की धारा 2 के खण्ड (vi) में उसे समनुदिष्ट है ;

(ङ) "सप्ताह" से शनिवार की मध्यरात्रि और उससे ठीक अगले शनिवार की मध्यरात्रि की कालावधि अभिप्रेत है ;

(ढ) अन्य सभी शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और मोटर यान अधिनियम, 1939 (1939 का 4) में परिभाषित हैं, वे ही अर्थ होंगे जो उस अधिनियम में उन्हें क्रमशः समनुदिष्ट हैं ।

अध्याय 2

मोटर परिवहन उपक्रमों का रजिस्ट्रीकरण

3. मोटर परिवहन उपक्रम का रजिस्ट्रीकरण – (1) ऐसे मोटर परिवहन उपक्रम का जिसे यह अधिनियम लागू होता हो, हर नियोजक उपक्रम को इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कराएगा ।

(2) मोटर परिवहन उपक्रम के रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन, नियोजक द्वारा विहित प्राधिकारी से ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय के भीतर किया जाएगा, जो विहित किया जाए ।

(3) जहां कि मोटर परिवहन उपक्रम इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जाए वहां नियोजक को एक रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र दिया जाएगा, जिसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी जो विहित की जाएं ।

अध्याय 3

निरीक्षक कर्मचारिवृन्द

4. मुख्य निरीक्षक और निरीक्षक – (1) राज्य सरकार, सम्यक् रूप से अर्हित किसी व्यक्ति को, राज्य के लिए मुख्य निरीक्षक और सम्यक् रूप से अर्हित उतने व्यक्तियों को, जितने वह ठीक समझे, मुख्य निरीक्षक के अधीनस्थ निरीक्षक, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियुक्त कर सकेगी ।

(2) मुख्य निरीक्षक वे स्थानीय सीमाएं घोषित कर सकेगा जिनके भीतर निरीक्षक इस अधिनियम के अधीन की अपनी शक्तियों का प्रयोग करेंगे, और ऐसी स्थानीय सीमाओं के भीतर, जो राज्य सरकार द्वारा

उसे समनुदिष्ट की जाएं, निरीक्षक की शक्तियों का प्रयोग स्वयं कर सकेगा ।

(3) मुख्य निरीक्षक और सभी निरीक्षक भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के अन्दर लोक सेवक समझे जाएंगे ।

5. निरीक्षकों की शक्तियां – (1) ऐसी शर्तों और निर्बंधनों के अध्यधीन, जिन्हें राज्य सरकार, साधारण या विशेष आदेश द्वारा अधिरोपित करे, मुख्य निरीक्षक या निरीक्षक –

(क) ऐसी परीक्षा और जांच कर सकेगा जो वह यह अभिनिश्चित करने के लिए ठीक समझे, कि क्या इस अधिनियम के या तद्धीन बनाए गए नियमों के उपबन्धों के अनुपालन किसी मोटर परिवहन उपक्रम के बारे में किया जा रहा है और उस प्रयोजन के लिए परिवहन यान के ड्राइवर से अपेक्षा कर सकेगा कि वह परिवहन यान को रोक ले और उतनी देर तक खड़ा रखे जितनी देर उसका खड़ा रखा जाना युक्तियुक्त रूप से आवश्यक हो ;

(ख) ऐसी सहायता के साथ, यदि कोई हो, जो वह ठीक समझे, किसी परिसर में, जिसकी बाबत वह यह विश्वास करने का कारण रखता हो कि वह किसी मोटर परिवहन उपक्रम के उपयोग या अधिभोग में है, इस अधिनियम के उद्देश्यों के कार्यान्वयन के प्रयोजन से, युक्तियुक्त समय पर प्रवेश कर सकेगा, उसका निरीक्षण कर सकेगा और उसकी तलाशी ले सकेगा ;

(ग) किसी मोटर परिवहन उपक्रम में नियोजित किसी मोटर परिवहन कर्मकार की परीक्षा कर सकेगा या इस अधिनियम के अनुसरण में रखे गए किसी रजिस्टर या अन्य दस्तावेज के पेश किए जाने की अपेक्षा कर सकेगा और उसी स्थल पर अन्यथा किसी व्यक्ति के ऐसे कथन ले सकेगा, जिन्हें वह इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक समझे ;

(घ) ऐसे रजिस्टरों या दस्तावेजों या उनके ऐसे प्रभागों को अभिगृहीत कर सकेगा या उनकी प्रतिलिपि ले सकेगा जिन्हें वह इस अधिनियम के अधीन किसी ऐसे अपराध के बारे में सुसंगत समझे

जिसकी बाबत वह यह विश्वास करने का कारण रखता हो कि वह नियोजक द्वारा किया गया है ;

(ङ) ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा जो विहित की जाएं :

परन्तु इस उपधारा के अधीन कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने या कोई ऐसा कथन करने के लिए विवश न किया जाएगा, जिसकी प्रवृत्ति उसे अपराध में फंसाने की हो ।

(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के उपबन्ध, इस धारा के अधीन की किसी तलाशी या अभिग्रहण को यथाशक्य ऐसे लागू होंगे जैसे वे उक्त संहिता की धारा 98 के अधीन निकाले गए वारंट के प्राधिकार के अधीन की तलाशी या अभिग्रहण को लागू होते हैं ।

6. निरीक्षकों को दी जाने वाली सुविधाएं – हर नियोजक, मुख्य निरीक्षक और निरीक्षक को इस अधिनियम के अधीन प्रवेश, निरीक्षण, परीक्षा या जांच करने के लिए सभी युक्तियुक्त सुविधाएं देगा ।

7. प्रमाणकर्ता सर्जन – (1) राज्य सरकार अर्हित चिकित्सा-व्यवसायियों को ऐसी स्थानीय सीमाओं के अन्दर या ऐसे मोटर परिवहन उपक्रमों या मोटर परिवहन उपक्रमों के वर्ग के लिए, जिन्हें वह उन्हें क्रमशः समनुदिष्ट करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए प्रमाणकर्ता सर्जन नियुक्त कर सकेगी ।

(2) प्रमाणकर्ता सर्जन उन कर्तव्यों का पालन करेगा जो निम्नलिखित के सम्बन्ध में विहित किए जाएं :–

(क) मोटर परिवहन कर्मकार की परीक्षा और प्रमाणन ;

(ख) जहां कि किसी मोटर परिवहन उपक्रम में कुमार किसी ऐसे काम में, जिससे उनके स्वास्थ्य को क्षति पहुंचना संभाव्य हो, मोटर परिवहन कर्मकारों के रूप में नियोजित किए जाते हैं, या किए जाने हैं वहां ऐसे चिकित्सीय पर्यवेक्षण का प्रयोग जो विहित किया जाए ।

अध्याय 4

कल्याण और स्वास्थ्य

8. कैन्टीन – (1) राज्य सरकार यह अपेक्षा करने वाले नियम बना सकेगी कि हर स्थान में, जिसमें मामूली तौर पर यह होता है कि मोटर परिवहन उपक्रम में नियोजित सौ या अधिक मोटर परिवहन कर्मकार हर दिन के दौरान कर्तव्य के सिलसिले में वहां पर आते हैं मोटर परिवहन कर्मकारों के उपयोग के लिए एक या अधिक कैन्टीन नियोजक द्वारा उपबन्धित की जाएंगी और बनाए रखी जाएंगी ।

(2) पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित का उपबन्ध कर सकेंगे –

(क) वह तारीख जिस तक कैन्टीन का उपबन्ध कर दिया जाएगा ;

(ख) उन कैन्टीनों की संख्या जो उपबंधित की जाएंगी, और कैन्टीनों के सन्निर्माण, उनमें की जगह, फर्नीचर और अन्य उपस्कर के बारे में स्तरमान ;

(ग) वे खाद्य पदार्थ जो वहां परोसे जा सकेंगे और वे प्रभार जो उनके लिए, लिए जा सकेंगे ;

(घ) कैन्टीन के लिए एक प्रबन्ध समिति का गठन और कैन्टीन के प्रबन्ध में मोटर परिवहन कर्मकारों का प्रतिनिधित्व ।

(3) राज्य सरकार, उपधारा (2) के खण्ड (ग) के संबंध में नियम बनाने की शक्ति मुख्य निरीक्षक को, ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जिन्हें वह अधिरोपित करे, प्रत्यायोजित कर सकेगी ।

9. आराम कमरे – (1) हर ऐसे स्थान में, जहां मोटर परिवहन उपक्रम में नियोजित परिवहन कर्मकारों से रात्रि में रुकने की अपेक्षा की जाती हो, उन मोटर परिवहन कर्मकारों के उपयोग के लिए उतने आराम कमरे या ऐसी अन्य यथोचित आनुकल्पिक जगह जो विहित की जाए, नियोजक द्वारा उपबन्धित की जाएगी और बनाए रखी जाएंगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन उपबन्धित किए जाने वाले आराम कमरे या आनुकल्पिक जगह पर्याप्त रूप से प्रकाशयुक्त और संवातित होंगी तथा साफ और सुखद दशा में बनाए रखी जाएंगी ।

(3) राज्य सरकार, इस धारा के अधीन उपबन्धित किए जाने वाले आराम कमरे या आनुकल्पिक जगह के सन्निर्माण और उनमें की जगह, फर्नीचर और अन्य उपस्कर के बारे में स्तरमान विहित कर सकेगी ।

10. वर्दियां – (1) राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, मोटर परिवहन उपक्रम के नियोजक से यह अपेक्षा करने वाले नियम बना सकेगी कि वह उस उपक्रम में नियोजित ड्राइवरों, कंडक्टरों और लाइन-जांच कर्मचारिवृन्द की वर्षा या ठंड से संरक्षा के लिए इतनी संख्या में और इस प्रकार की वर्दियों, बरसातियों अथवा ऐसी ही अन्य सुख-सुविधाओं का, जो नियमों में विनिर्दिष्ट की जाएं, उपबन्ध करें ।

(2) ड्राइवरों, कंडक्टरों और लाइन-जांच कर्मचारिवृन्द को, उपधारा (1) के अधीन उपबन्धित वर्दियों की धुलाई का भत्ता नियोजक द्वारा ऐसी दरों से दिया जाएगा, जो कि विहित की जाएं :

परन्तु ऐसा कोई भी भत्ता ऐसे नियोजक द्वारा देय न होगा जिसने वर्दियों की धुलाई का स्वयं अपने खर्च पर यथायोग्य इंतजाम किया है ।

11. चिकित्सीय सुविधाएं – नियोजक द्वारा मोटर परिवहन कर्मकारों के लिए आसानी से उपलभ्य ऐसी चिकित्सीय सुविधाएं, ऐसे संचालन केन्द्रों और विराम स्टेशनों पर, जैसे राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं, उपबन्धित की जाएंगी और बनाए रखी जाएंगी ।

12. प्राथमिक उपचार सुविधाएं – (1) विहित अन्तर्वस्तुओं से सज्जित प्राथमिक उपचार बक्स, नियोजक द्वारा हर परिवहन यान में इस प्रकार उपबन्धित किया जाएगा और बनाए रखा जाएगा कि काम के सब घंटों में उस तक आसानी से पहुंच हो सके ।

(2) प्राथमिक उपचार बक्स में विहित अन्तर्वस्तुओं के सिवाय और कुछ नहीं रखा जाएगा ।

(3) प्राथमिक उपचार बक्स को परिवहन यान के ड्राइवर या कंडक्टर के भारसाधन में रखा जाएगा, जिसे उसका प्रयोग करने में प्रशिक्षण की सुविधाएं दी जाएंगी ।

अध्याय 5

नियोजन के घंटे और उस पर निर्बन्धन

13. वयस्थ मोटर परिवहन कर्मकारों के लिए काम के घंटे – किसी भी वयस्थ मोटर परिवहन कर्मकार से एक दिन में आठ घंटे और एक सप्ताह में अड़तालीस घंटे से अधिक काम न तो अपेक्षित किया जाएगा, न उसे करने दिया जाएगा :

परन्तु जहां कि कोई ऐसा मोटर परिवहन कर्मकार ऐसे लंबी दूरी के मार्गों पर, या ऐसे त्यौहारों के या अन्य अवसरों पर, जो विहित रीति से और विहित प्राधिकारी द्वारा अधिसूचित किए जाएं, किसी मोटर परिवहन सेवा को चलाने में लगा हो, वहां नियोजक, ऐसे प्राधिकारी के अनुमोदन से, एक दिन में आठ घंटे से या एक सप्ताह में अड़तालीस घंटे से अधिक काम ऐसे मोटर परिवहन कर्मकार से अपेक्षित कर सकेगा या उसे करने दे सकेगा, किन्तु किसी भी दशा में वह, यथास्थिति, एक दिन में दस घंटे से और एक सप्ताह में चौवन घंटे से अधिक न होगा :

परन्तु यह भी मोटर परिवहन सेवा के ठप्प या अस्तव्यस्त हो जाने की, या यातायात को बाधा पहुंचाने की, या किसी दैवकृत की दशा में नियोजक, ऐसी शर्तों और निर्बंधनों के अध्यधीन, जो विहित किए जाएं, एक दिन में आठ घंटे से अधिक और एक सप्ताह में अड़तालीस घंटे से अधिक काम किसी ऐसे मोटर परिवहन कर्मकार से अपेक्षित कर सकेगा या उसे करने दे सकेगा ।

14. मोटर परिवहन कर्मकारों के रूप में नियोजित कुमारों के लिए काम के घंटे – किसी कुमार को किसी मोटर परिवहन उपक्रम में :–

(क) एक दिन में छह घंटे से अधिक, जिसमें आधे घंटे का विश्राम-अन्तराल सम्मिलित है ;

(ख) 10 बजे अपराह्न और 6 बजे पूर्वाह्न के बीच,

मोटर परिवहन कर्मकार के रूप में काम करने के लिए न तो नियोजित किया जाएगा और न अपेक्षित किया जाएगा ।

15. दैनिक विश्राम अन्तराल – (1) वयस्थ मोटर परिवहन कर्मकारों के सम्बन्ध में हर एक दिन काम के घंटे ऐसे नियत किए जाएंगे कि काम की कोई भी कालावधि पांच घंटे से अधिक की न हो और ऐसा कोई भी मोटर परिवहन कर्मकार, कम से कम आधे घंटे का विश्राम-अन्तराल ले चुकाने के पूर्व, पांच घंटे से अधिक काम न करें :

परन्तु इस उपधारा के उपबन्ध, जहां तक कि वे विश्राम-अन्तराल के सम्बन्ध में हैं, उस मोटर परिवहन कर्मकार को लागू नहीं होंगे जिससे उस दिन छह घंटे से अधिक काम करने की अपेक्षा न की जाए ।

(2) हर एक दिन के काम के घंटे इस प्रकार नियत किए जाएंगे कि मोटर परिवहन कर्मकार को, धारा 13 के द्वितीय परन्तुक में निर्दिष्ट किसी दशा में के सिवाय, किसी भी दिन कर्तव्य-काल के पर्यवसान और अगले दिन कर्तव्य-काल के प्रारंभ के बीच कम से कम नौ लगातार घंटों की विश्राम-कालावधि अनुज्ञात हो जाए ।

16. विस्तृति – (1) वयस्थ मोटर परिवहन कर्मकार के काम के घंटे, धारा 13 के द्वितीय परन्तुक में निर्दिष्ट दशा के सिवाय, ऐसे व्यवस्थित किए जाएंगे कि उनकी विस्तृति धारा 15 के अधीन विश्राम-अन्तराल सहित किसी दिन बारह घंटे से अधिक न हो ।

(2) कुमार मोटर परिवहन कर्मकार के काम के घंटे ऐसे व्यवस्थित किए जाएंगे कि उनकी विस्तृति धारा 14 के अधीन विश्राम-अन्तराल सहित किसी भी दिन नौ घंटे से अधिक न हो ।

17. विभाजित कर्तव्य काल – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए यह है कि मोटर परिवहन कर्मकार के काम के घंटे किसी भी दिन दो से अधिक खंडों में विभाजित नहीं किए जाएंगे ।

18. काम के घंटों की सूचना – (1) ऐसे प्ररूप में और ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, काम के घंटों की ऐसी सूचना हर एक नियोजक

द्वारा संप्रदर्शित की जाएगी और सही रखी जाएगी, जिसमें हर दिन के लिए वे घंटे स्पष्ट तौर पर दर्शित किए गए हों जिनके दौरान मोटर परिवहन कर्मकारों से काम करने की अपेक्षा की जा सकती है ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए यह है कि इस प्रकार संप्रदर्शित काम के घंटों की सूचना के अनुसार से अन्यथा काम न तो किसी भी ऐसे मोटर परिवहन कर्मकार से अपेक्षित किया जाएगा, न उसे करने दिया जाएगा ।

19. साप्ताहिक विश्राम – (1) राज्य सरकार सात दिन की हर कालावधि में एक विश्राम दिन का, जो सभी मोटर परिवहन कर्मकारों को अनुज्ञात होगा, उपबन्ध करने वाले नियम शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, नियोजक, मोटर परिवहन सेवा की किसी भी अस्तव्यस्तता का निवारण करने के लिए, किसी मोटर परिवहन कर्मकार से किसी भी विश्राम दिन को, जो अवकाश दिन न हो, काम करने की अपेक्षा कर सकेगा, किन्तु ऐसे कि मोटर परिवहन कर्मकार, बीच में एक पूरे दिन के अवकाश के बिना, लगातार दस दिन से अधिक काम न करे ।

(3) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसे मोटर परिवहन कर्मकार को लागू नहीं होगी जिसके नियोजन की कुल कालावधि छुट्टी पर बिताए गए दिन को सम्मिलित करते हुए, छह दिन से कम है ।

20. प्रतिकरात्मक विश्राम दिन – जहां कि नियोजक को धारा 19 के प्रवर्तन से इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अनुदत्त छूट के परिणामस्वरूप, कोई मोटर परिवहन कर्मकार उन विश्राम-दिनों में से, किसी से, जिनका वह उस धारा के अधीन हकदार हो, वंचित हो जाए, वहां मोटर परिवहन कर्मकार को उस मास के भीतर जिसमें उसे वे विश्राम-दिन अनुज्ञेय हैं, या उस मास के अव्यवहित पश्चात्वर्ती दो मास के भीतर उतने प्रतिकरात्मक विश्राम-दिन अनुज्ञात किए जाएंगे जितने विश्राम-दिनों की हानि इस प्रकार हुई है ।

अध्याय 6

अल्पवय व्यक्तियों का नियोजन

21. बालकों के नियोजन का प्रतिषेध – किसी भी बालक से किसी मोटर परिवहन उपक्रम में किसी भी हैसियत में काम न तो अपेक्षित किया जाएगा, न उसे करने दिया जाएगा ।

22. मोटर परिवहन कर्मकारों के रूप में नियोजित कुमारों द्वारा टोकन अपने पास रखा जाना – किसी भी कुमार से किसी मोटर परिवहन उपक्रम में मोटर परिवहन कर्मकार के रूप में काम तब के सिवाय न तो अपेक्षित किया जाएगा, न उसे करने दिया जाएगा, जबकि –

(क) उसके बारे में धारा 23 के अधीन अनुदत्त योग्यता-प्रमाणपत्र नियोजक की अभिरक्षा में हो ; तथा

(ख) ऐसे कुमार के पास उस समय जब वह काम में लगा हो, ऐसे प्रमाणपत्र के प्रति निर्देश करने वाला टोकन हो ।

23. योग्यता प्रमाणपत्र – (1) प्रमाणकर्ता सर्जन, किसी कुमार अथवा उसके माता-पिता या संरक्षक के ऐसे आवेदन पर, जिसके साथ नियोजक द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित इस बात की दस्तावेज हो कि यदि ऐसा व्यक्ति उस काम के लिए योग्य प्रमाणित हुआ हो तो वह मोटर परिवहन उपक्रम में मोटर परिवहन कर्मकार के रूप में नियोजित किया जाएगा, अथवा काम करने का आशय रखने वाले कुमार के प्रति निर्देश से नियोजक के या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति के आवेदन पर, ऐसे व्यक्ति की परीक्षा करेगा और मोटर परिवहन कर्मकार के रूप में काम करने की उनकी योग्यता अभिनिश्चित करेगा ।

(2) इस धारा के अधीन अनुदत्त योग्यता-प्रमाणपत्र अपनी तारीख से बारह मास की कालावधि के लिए विधिमान्य होगा, किन्तु नवीकृत किया जा सकेगा ।

(3) इस धारा के अधीन प्रमाणपत्र के लिए संदेय फीस नियोजक द्वारा संदत्त की जाएगी और कुमार, उसके माता-पिता या संरक्षक से

वसूलीय नहीं होगी ।

24. चिकित्सीय परीक्षा की अपेक्षा करने की शक्ति – जहां कि निरीक्षक की यह राय हो कि किसी मोटर परिवहन उपक्रम में योग्यता-प्रमाणपत्र के बिना काम करने वाला मोटर परिवहन कर्मकार कुमार है वहां वह नियोजक पर यह अपेक्षा करने वाली सूचना की तामील कर सकेगा कि ऐसे कुमार मोटर परिवहन कर्मकार की परीक्षा किसी प्रमाणकर्ता सर्जन द्वारा की जाए, और यदि निरीक्षक ऐसा निदेश दे तो ऐसे कुमार मोटर परिवहन कर्मकार को किसी मोटर परिवहन उपक्रम में तब तक न तो नियोजित किया जाएगा और न काम करने दिया जाएगा जब तक इस प्रकार उसकी परीक्षा न हो गई हो और धारा 23 के अधीन उसे योग्यता-प्रमाणपत्र अनुदत्त न कर दिया गया हो ।

अध्याय 7

मजदूरी और छुट्टी

25. 1936 के अधिनियम 4 का मोटर परिवहन कर्मकारों को मजदूरी के संदाय पर लागू होना – तत्समय यथा प्रवृत्त मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1963 का 4) जैसे वह किसी औद्योगिक स्थापना में संदेय मजदूरी को लागू होता है, वैसे ही मोटर परिवहन उपक्रम में, नियोजित मोटर परिवहन कर्मकारों को इस प्रकार लागू होगा मानो उक्त अधिनियम का विस्तार, उसकी धारा 1 की उपधारा (5) के अधीन, राज्य सरकार की अधिसूचना द्वारा, ऐसे मोटर परिवहन कर्मकारों की मजदूरी के संदाय पर कर दिया गया हो, और मानो परिवहन उपक्रम उक्त अधिनियम के अर्थ के अन्दर औद्योगिक स्थापन हो ।

26. अतिकाल के लिए अतिरिक्त मजदूरी – (1) जहां कि कोई वयस्थ मोटर परिवहन कर्मकार धारा 13 के प्रथम परन्तुक में निर्दिष्ट किसी दशा में किसी भी दिन आठ घंटे से अधिक काम करे या जहां कि धारा 19 की उपधारा (2) के अधीन उससे किसी विश्राम-दिन को काम करने की अपेक्षा की जाए, वहां, वह, यथास्थिति, अतिकालिक काम या विश्राम-दिन को किए गए काम के लिए अपनी मजदूरी की मामूली दर से

दुगुनी दर से मजदूरी का हकदार होगा ।

(2) जहां कि कोई वयस्थ मोटर परिवहन कर्मकार, धारा 13 के द्वितीय परन्तुक में निर्दिष्ट किसी दशा में किसी भी दिन आठ घंटे से अधिक काम करे वहां वह अतिकालिक काम के लिए ऐसी दरों से मजदूरी का हकदार होगा जो विहित की जाएं ।

(3) जहां कि किसी कुमार मोटर परिवहन कर्मकार से किसी विश्राम-दिन को काम करने की अपेक्षा धारा 19 की उपधारा (2) के अधीन की जाए, वहां वह विश्राम-दिन को किए गए काम के लिए अपनी मजदूरी की मामूली दर से दुगुनी दर से मजदूरी पाने का हकदार होगा ।

(4) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, मोटर परिवहन कर्मकार के संबंध में "मजदूरी की मामूली दर" से महंगाई भत्ता सहित उसकी आधारिक मजदूरी अभिप्रेत है ।

27. मजदूरी सहित वार्षिक छुट्टी – (1) ऐसे अवकाश दिनों पर, जो विहित किए जाएं, प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, हर मोटर परिवहन कर्मकार को जिसने किसी कलैण्डर वर्ष के दौरान किसी मोटर परिवहन उपक्रम में दो सौ चालीस या अधिक दिनों की कालावधि तक काम किया हो, निम्नलिखित दर से संगणित संख्या के दिनों की मजदूरी सहित छुट्टी पश्चात्वर्ती कलैण्डर वर्ष के दौरान अनुज्ञात की जाएगी :–

(क) यदि वह वयस्थ हो तो पूर्ववर्ती कलैण्डर वर्ष के दौरान उसके द्वारा किए गए काम के हर बीस दिन पर एक दिन ; तथा

(ख) यदि वह कुमार हो तो पूर्ववर्ती कलैण्डर वर्ष के दौरान उसके द्वारा किए गए काम के हर पन्द्रह दिन पर एक दिन ।

(2) वह मोटर परिवहन कर्मकार जिसकी सेवा जनवरी के प्रथम दिन को प्रारम्भ न होकर अन्यथा प्रारम्भ होती हो, यथास्थिति, उपधारा (1) के खण्ड (क) या खण्ड (ख) में अधिकथित दर से मजदूरी सहित छुट्टी का हकदार होगा, यदि उसने कलैण्डर वर्ष के अवशिष्ट भाग के दिनों की कुल संख्या के दो-तिहाई दिन काम किया हो ।

(3) यदि कोई मोटर परिवहन कर्मकार वर्ष के दौरान सेवा से उन्मोचित या पदच्युत कर दिया जाए, तो वह उपधारा (1) में अधिकथित दर से मजदूरी सहित छुट्टी का हकदार होगा, भले ही उसने उपधारा (1) या उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट उस पूरी कालावधि भर काम न किया हो जिससे वह उपार्जित छुट्टी का हकदार होता ।

(4) इस धारा के अधीन छुट्टी की संगणना करने में आधे दिन या इससे अधिक की छुट्टी के भिन्न को पूरे एक दिन की छुट्टी माना जाएगा और आधे दिन से कम का भिन्न छोड़ दिया जाएगा ।

(5) यदि कोई मोटर परिवहन कर्मकार, यथास्थिति, उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन अपने को अनुज्ञात संपूर्ण छुट्टी किसी एक कलैण्डर वर्ष में न ले, तो उसके द्वारा न ली गई छुट्टी उस छुट्टी में जोड़ दी जाएगी जो उसे अगले कलैण्डर वर्ष के लिए अनुज्ञेय हो :

परन्तु छुट्टी के दिनों की कुल संख्या जो अगले वर्ष को अग्रनीत की जा सकेगी वयस्थ की दशा में तीस से और कुमार की दशा में चालीस से अधिक न होगी ।

(6) इस धारा में, "कलैण्डर वर्ष" से जनवरी के पहले दिन को प्रारम्भ होने वाला वर्ष अभिप्रेत है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, छुट्टी के अन्तर्गत साप्ताहिक अवकाश दिन या त्यौहार के या ऐसे ही अन्य अवसरों के अवकाश दिन नहीं आएंगे, चाहे वे छुट्टी की कालावधि के दौरान या उसके किसी छोर पर पड़ते हों ।

28. छुट्टी की कालावधि के दौरान मजदूरी – (1) उस छुट्टी के लिए, जो मोटर परिवहन कर्मकार को धारा 27 के अधीन अनुज्ञात हो उसे संदाय ऐसी दर से किया जाएगा, जो उसकी छुट्टी के अव्यवहित पूर्ववर्ती मास के उन दिनों की बाबत, जिनमें उसने काम किया, कुल पूर्णकालिक मजदूरी के उस दैनिक औसत के बराबर हो, जो उस मजदूरी में से किसी अतिकालिक उपार्जन और बोनस को, यदि कोई हो, अपवर्जित करके, किन्तु उसमें महंगाई भत्ते को और कर्मकार को उन दिनों के लिए, जिनमें उसने काम किया, नियोजक द्वारा खाद्यान्नों के रियायती प्रदाय

से प्रोद्भावी फायदे के, यदि कोई हो, नकद समतुल्य को सम्मिलित करके आए ।

(2) उस मोटर परिवहन कर्मकार को, जिसे चार दिन से अन्यून की छुट्टी धारा 27 के अधीन अनुज्ञात हुई हो, नियोजक से इस निमित्त उसके आवेदन करने पर, उसकी छुट्टी की कालावधि के लिए उसे वह रकम, जो उसे संदेय मजदूरी के लगभग समतुल्य हो, उसकी छुट्टी आरम्भ होने से पहले अग्रिम के रूप में संदत्त की जाएगी और इस प्रकार संदत्त रकम छुट्टी की पूर्वोक्त कालावधि के लिए उसे देय मजदूरी के विरुद्ध समायोजित की जाएगी ।

(3) यदि मोटर परिवहन कर्मकार को वह छुट्टी, जिसका वह धारा 27 की उपधारा (3) के अधीन हकदार हो, अनुदत्त न की जाए, तो उसके बजाय उसे उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट दरों से मजदूरी संदत्त की जाएगी ।

अध्याय 8

शास्तियां और प्रक्रिया

29. बाधा डालना – (1) जो कोई किसी निरीक्षक के उसके इस अधिनियम के अधीन के कर्तव्यों के अधीन निर्वहन में बाधा डालेगा, या किसी मोटर परिवहन उपक्रम में संबंध में इस अधिनियम द्वारा या के अधीन प्राधिकृत कोई निरीक्षण, परीक्षा या जांच करने के लिए निरीक्षक को युक्तियुक्त सुविधा देने से इनकार करेगा या देने में जानबूझकर उपेक्षा करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(2) जो कोई इस अधिनियम के अनुसरण में रखे गए किसी रजिस्टर या अन्य दस्तावेज को निरीक्षक द्वारा मांगे जाने पर पेश करने से जानबूझकर इनकार करेगा, या किसी ऐसे निरीक्षक के, जो इस अधिनियम के अधीन के अपने कर्तव्यों के अनुसरण में कार्य कर रहा है, समक्ष उपसंजात होने से, या उसके द्वारा परीक्षा की जाने से किसी व्यक्ति को निवारित करेगा या निवारित करने का प्रयत्न करेगा या कोई

ऐसी बात करेगा जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उससे उसका इस प्रकार निवारित होना संभाव्य है, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

30. योग्यता के मिथ्या प्रमाणपत्र का उपयोग – जो कोई धारा 23 के अधीन किसी अन्य व्यक्ति को अनुदत्त किसी योग्यता प्रमाणपत्र का, अपने को उस धारा के अधीन अनुदत्त प्रमाणपत्र के रूप में जानते हुए उपयोग करेगा या उपयोग करने का प्रयत्न करेगा, अथवा ऐसा योग्यता प्रमाणपत्र अपने को अनुदत्त किए जाने पर जानते हुए उसका अन्य व्यक्ति को उपयोग करने देगा, या करने का प्रयत्न करने देगा, वह कारावास से, जो एक मास तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो पचास रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

31. मोटर परिवहन कर्मकारों के नियोजन के बारे में उपबंधों का उल्लंघन – जो कोई, उसके सिवाय जैसा कि इस अधिनियम द्वारा या के अधीन अन्यथा अनुज्ञात है, इस अधिनियम के या तद्धीन बनाए गए किन्हीं नियमों के किसी ऐसे उपबंध का उल्लंघन करेगा जो मोटर परिवहन उपक्रम में व्यक्तियों के नियोजन को प्रतिषिद्ध, निर्बंधित या विनियमित करता हो, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा, और चालू रहने वाले उल्लंघन की दशा में अतिरिक्त जुर्माने से, जो हर ऐसे दिन के लिए, जिसके दौरान ऐसा उल्लंघन ऐसे प्रथम उल्लंघन के लिए दोषसिद्धि के पश्चात् चालू रहे, पचहत्तर रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

32. अन्य अपराध – जो कोई किसी ऐसे निदेश की, जो ऐसा निदेश देने के लिए इस अधिनियम के अधीन सशक्त किए गए किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा विधिपूर्वक दिया गया हो, जानबूझकर अवज्ञा करेगा या इस अधिनियम के या तद्धीन बनाए गए किन्हीं नियमों के उपबंधों में से किसी का, जिसके लिए इस अधिनियम द्वारा या के अधीन अन्यत्र कोई शास्ति उपबंधित न हो, उल्लंघन करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

33. पूर्व दोषसिद्धि के पश्चात् वर्धित शास्ति – यदि कोई व्यक्ति, जो इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध हो चुका हो, पुन: उसी उपबंध का उल्लंघन अंतर्वलित करने वाले किसी अपराध का दोषी होगा तो वह पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर कारावास से, जो छह मास तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा :

परन्तु जिस अपराध के लिए दंड दिया जा रहा हो, उसके किए जाने से दो वर्ष से अधिक पूर्व की गई दोषसिद्धि का इस धारा के प्रयोजनार्थ संज्ञान नहीं किया जाएगा ।

34. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) यदि इस अधिनियम के अधीन अपराध करने वाला व्यक्ति कंपनी है तो कंपनी और हर ऐसा व्यक्ति भी जो अपराध किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए कंपनी का भारसाधक और उस कंपनी के प्रति उत्तरदायी था, उस अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही की जाने और दंडित किए जाने के दायित्व के अधीन होंगे :

परन्तु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई भी बात ऐसे किसी व्यक्ति को किसी दंड के दायित्व के अधीन न करेगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या ऐसे अपराध का किया जाना निवारित करने के लिए उसने सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित कर दिया जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक या प्रबंध-अभिकर्ता या अन्य किसी आफिसर की सम्मति या मौनानुकूलता से किया गया है या वह उसकी ओर से हुई किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसे निदेशक, प्रबंधक, प्रबंध-अभिकर्ता या अन्य आफिसर भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही की जाने और दंडित किए जाने के दायित्व के अधीन होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत

फर्म या व्यष्टियों का कोई अन्य संगम आता है ; तथा

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

35. अपराधों का संज्ञान – कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के अधीन के किसी अपराध का संज्ञान, निरीक्षक द्वारा, या उसकी लिखित पूर्व मंजूरी से, किए गए परिवाद पर करने के सिवाय न करेगा और प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के न्यायालय से अवर कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण न करेगा ।

36. अभियोजनों की परिसीमा – कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान तब के सिवाय न करेगा, जबकि उसका परिवाद उस तारीख से, जब अभिकथित अपराध का किया जाना निरीक्षक के ज्ञान में आया, तीन मास के अंदर किया गया हो :

परन्तु जहां कि अपराध निरीक्षक द्वारा किए गए लिखित आदेश की अवज्ञा करने का हो वहां उसका परिवाद उस तारीख से, छह मास के अंदर किया जा सकेगा, जब उस अपराध का किया जाना अभिकथित हो ।

अध्याय 9

प्रकीर्ण

37. इस अधिनियम से असंगत विधियों और करारों का प्रभाव – (1) इस अधिनियम के उपबंध, किसी भी अन्य विधि में या इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् किए गए किसी भी अधिनिर्णय, करार या सेवा की संविदा के निबंधनों में उनसे असंगत किसी बात के अंतर्विष्ट होते हुए भी प्रभावी होंगे :

परन्तु जहां कि ऐसे अधिनिर्णय, करार या सेवा की संविदा के अधीन या अन्यथा, कोई मोटर परिवहन कर्मकार किसी विषय के बारे में ऐसी प्रसुविधाओं का हकदार हो जो उसको उनसे अधिक अनुकूल हों जिनका वह इस अधिनियम के अधीन हकदार होगा वहां मोटर परिवहन कर्मकार, उस विषय के बारे में उन अधिक अनुकूल प्रसुविधाओं का

हकदार इस बात के होते हुए भी बना रहेगा कि वह अन्य विषयों के बारे में इस अधिनियम के अधीन प्रसुविधाएं प्राप्त करता है ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह, किसी मोटर परिवहन कर्मकार को नियोजन से किसी विषय के बारे में ऐसे अधिकार या विशेषाधिकार अनुदत्त करने के लिए, जो उसके लिए उनसे अधिक अनुकूल हों जिनका वह इस अधिनियम के अधीन हकदार होगा, प्रवारित करती है ।

38. छूट – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात उस परिवहन यान को या उसके संबंध में लागू नहीं होगी, जो –

(i) रुग्ण या क्षत व्यक्तियों के परिवहन के लिए उपयोग में लाया जाता है ;

(ii) भारत की सुरक्षा या किसी राज्य की सुरक्षा या लोक-व्यवस्था बनाए रखने से संसक्त किसी प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाता है ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि ऐसी शर्तों और निर्बंधनों के, यदि कोई हों, अध्यधीन, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, इस अधिनियम के या तद्धीन बनाए गए नियमों के उपबंध –

(i) उन मोटर परिवहन कर्मकारों को, जो राज्य सरकार की राय में, किसी मोटर परिवहन उपक्रम में पर्यवेक्षण या प्रबंध के पद धारण किए हुए हैं ;

(ii) किसी अंशकालिक मोटर परिवहन कर्मकार को ; तथा

(iii) नियोजकों के किसी वर्ग को,

लागू नहीं होंगे :

परन्तु इस उपधारा के अधीन कोई आदेश निकालने के पूर्व राज्य सरकार उसकी एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजेगी ।

39. निदेश देने की शक्तियां – केन्द्रीय सरकार किसी राज्य सरकार

की उस राज्य में इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों का निष्पादन करने के संबंध में निदेश दे सकेगी ।

40. नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार, पूर्व प्रकाशन की शर्त के अध्यधीन रहते हुए, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, [1][राजपत्र में अधिसूचना द्वारा,] बना सकेगी :

परन्तु साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) की धारा 23 के अधीन विनिर्दिष्ट की जाने वाली तारीख उस तारीख से छह सप्ताह से कम की न होगी जिसको प्रस्थापित नियमों का प्रारूप प्रकाशित किया गया था ।

(2) विशिष्टत: और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित का उपबंध कर सकेंगे –

(क) मोटर परिवहन उपक्रम के रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन का प्ररूप, वह समय जिसके भीतर और वह प्राधिकारी जिससे ऐसा आवेदन किया जा सकेगा ;

(ख) मोटर परिवहन उपक्रम के बारे में रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र का अनुदान और ऐसे रजिस्ट्रीकरण के लिए संदेय फीसें ;

(ग) मुख्य निरीक्षक और निरीक्षक के बारे में अपेक्षित अर्हताएं ;

(घ) वे शक्तियां जिनका निरीक्षकों द्वारा प्रयोग किया जा सकेगा, और वह रीति जिससे ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकेगा ;

(ङ) चिकित्सीय पर्यवेक्षण, जो प्रमाणकर्ता सर्जनों द्वारा किया जा सकेगा ;

(च) मुख्य निरीक्षक या निरीक्षक के किसी आदेश से अपीलें और वह प्ररूप जिसमें, वह समय जिसके भीतर और वे प्राधिकारी जिन्हें ऐसी अपीलें की जा सकेंगी ;

(छ) वह समय, जिसके भीतर उपबंधित की जाने और बनाए

---

[1] 1986 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-5-1986 से) अंत: स्थापित ।

रखी जाने के लिए इस अधिनियम द्वारा अपेक्षित सुविधाओं का इस प्रकार उपबंध किया जा सकेगा ;

(ज) चिकित्सीय सुविधाएं, जिनको मोटर परिवहन कर्मकारों के लिए उपबंध किया जाना चाहिए ;

(झ) उस उपस्कर का प्रकार जिसका उपबंध प्राथमिक उपचार बक्सों में किया जाना चाहिए ;

(ञ) वह रीति जिससे लम्बी दूरी के मार्ग, त्यौहार के और अन्य अवसर विहित प्राधिकारी द्वारा अधिसूचित किए जाएंगे ;

(ट) वे शर्तें और निर्बन्धन जिनके अध्यधीन धारा 13 के द्वितीय परन्तुक में निर्दिष्ट किसी दशा में एक दिन में आठ घंटे से अधिक या एक सप्ताह में अड़तालीस घंटे से अधिक काम किसी मोटर परिवहन कर्मकार से अपेक्षित किया जा सकेगा या उसे करने दिया जा सकेगा ;

(ठ) वह प्ररूप और वह रीति जिसमें काम की कालावधि की सूचनाएं संप्रदर्शित की जाएंगी और बनाए रखी जाएंगी ;

(ड) धारा 13 के द्वितीय परन्तुक में निर्दिष्ट किसी दशा में मोटर परिवहन कर्मकार द्वारा किए गए अतिकालिक काम के बारे में अतिरिक्त मजदूरी की दरें ;

(ढ) वे रजिस्टर जो नियोजकों द्वारा रखे जाने चाहिएं और वे कभी-कभी भेजी जाने वाली या कालिक विवरणियां, जिनकी अपेक्षा राज्य सरकार की राय में इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए की जाए ; तथा

(ण) कोई अन्य बात, जो विहित की जानी है या की जाए ।

[1][(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।]

---

[1] 1986 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-5-1986 से) अंत: स्थापित ।

iii Cover

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

IV Cover

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in